THE FREE INDOLOGICAL COLLECTION

WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC

FAIR USE DECLARATION

This book is sourced from another online repository and provided to you at this site under the TFIC collection. It is provided under commonly held Fair Use guidelines for individual educational or research use. We believe that the book is in the public domain and public dissemination was the intent of the original repository. We applaud and support their work wholeheartedly and only provide this version of this book at this site to make it available to even more readers. We believe that cataloging plays a big part in finding valuable books and try to facilitate that, through our TFIC group efforts. In some cases, the original sources are no longer online or are very hard to access, or marked up in or provided in Indian languages, rather than the more widely used English language. TFIC tries to address these needs too. Our intent is to aid all these repositories and digitization projects and is in no way to undercut them. For more information about our mission and our fair use guidelines, please visit our website.

Note that we provide this book and others because, to the best of our knowledge, they are in the public domain, in our jurisdiction. However, before downloading and using it, you must verify that it is legal for you, in your jurisdiction, to access and use this copy of the book. Please do not download this book in error. We may not be held responsible for any copyright or other legal violations. Placing this notice in the front of every book, serves to both alert you, and to relieve us of any responsibility.

If you are the intellectual property owner of this or any other book in our collection, please email us, if you have any objections to how we present or provide this book here, or to our providing this book at all. We shall work with you immediately.

-The TFIC Team.

प्रेमन ारायण टंडन, एम० ए० साहित्य रत्न

विद्या-मन्दिर

कर्मपथ

चार एकांकी

प्रेमनारायण टंडन, एम० ए०

प्रकाशक

विद्यामंदिर, रानीकटरा, लखनऊ

प्रथम संस्करण

विजयदशमी, १९५०

मूल्य—सवा रुपया

मुद्रक

विद्यामंदिर प्रेस, रानीकटरा, लखनऊ

निवेदन

'प्रेरणा' (१९४५) मेरा प्रथम एकांकी-संग्रह था और 'संकल्प' (१९४६) दूसरा। चार वर्ष बाद अब यह तीसरा संकलन प्रकाशित हो रहा है। प्रथम के प्रकाशन के अवसर पर जो संकोच था, उससे बहुत-कुछ मुक्ति 'संकल्प' के साथ मुझे मिल गयी थी। और अब 'कर्मपथ' पर मैं निर्भय होकर विचर रहा हूँ। आलोचकों की सम्मति का सविनय स्वागत करने के लिए आज मैं प्रस्तुत हूँ। उनकी निष्पक्षता मेरा पथ प्रशस्त करेगी, इसका मुझे विश्वास है।

—प्रे० ना० टंडन

सूची

१	कर्मपथ	६
२	रोगी के बच्चे	३७
३	लेखक की पत्नी	५६
४	दंड	१०३

भूमिका

शिष्यवर प्रेमनारायण टंडन सफल आलोचक ही नही है, आपने ललित साहित्य का निर्माण भी किया है। प्रस्तुत पुस्तक में उनके चार एकांकी नाटक संगृहीत है। पहला 'कर्मपथ' अतुकांत पद्य में है। ऋग्वैदिक गाथा का एक छोटा सा अंशले कर सुरगुरु द्वारा अपने पुत्र को आदेश देने के बहाने कुशल लेखक ने भारतीय नवयुवकों को कर्मपथ पर चलने के लिए ललकारा है—

सुनो करुण क्रंदन अपनी माताओं का,
आर्त्तनाद हृदयविदारक दलितों का;
बहते देख चुके तो अनेक बार आँसू
खून के; अब तो उठो, कर्त्तव्य निज सोचो
स्वदेश के प्रति तुम, माता ताक रही है
आशा हो उसकी, तुम ही आशा के प्राण हो;
सँदेश है मेरा तुमसे, नवयुवकों से
निज स्वदेश-प्रासाद के प्रमुख स्तम्भों से।

इस ललकार के पहले सुरगुरु अपने पुत्र को इस कर्मपथ का संकेत भी कहते हैं—

जाओ तुम प्रात ही पास श्री शुक्राचार्य के
दानवों के गुरुवर हैं जो अति विज्ञ हैं

संजीवनो विद्या में ; सीखना उनसे यही।

स्वतंत्र भारत की वर्तमान परिस्थिति में सुरगुरु के आदेश भारतीय नवयुवकों के लिए भी घटित होते हैं कि सुरभूमि भारत आध्यात्मिकता का केंद्र रहा, मानवता के पाठ हम पढ़ते-पढ़ाते रहे, परतु दानवों की संजीवनी विद्या अर्थात् विज्ञान से अनभिज्ञ रहे। अतएव देवासुर संग्राम में देवभूमि की हार हुई। असुरों की पारस्परिक मारकाट के परिणाम मे देवभूमि भारत को स्वतंत्र होने का अवसर मिला है तो शीघ्र ही आधुनिक शुक्राचार्य से हमारे नवयुवकों को विज्ञान की संजीवनी विद्या सीखनी है, तभी हम अपनी स्वतत्रता की रक्षा कर सकेंगे।

सुरगुर का पुत्र 'कच' शंका करता है:—

सिखायगे रिपु का हो विद्या संजीवनी वे
काटेंगे हाथ से डाल अपनी क्या स्वयं ही ?

उसका समाधान सुरगुरु करते हैं—

सिद्धि यही विद्या की।

विद्या दान से ही बढ़ती है, पाश्चात्य विद्वानों ने वैज्ञानिकों में विज्ञान-विनिमय करके ही वैज्ञानिक उन्नति की। प्राच्य संसार ने उसे छिपाने और बंद रखने का प्रयत्न किया गया। अतएव यहाँ विद्या फूल-फल न सकी।

इस एकांकी नाटक का एक घंटे के भीतर सरलता से अभिनय हो सकता है।

अगले तीन एकांकी गद्य में ही हैं। पहले 'रोगी के बच्चे' में भावुक साहित्यिक के रोग-ग्रस्त होने पर उसके पारिवारिक जीवन का एक कारुणिक दृश्य है। रोगी के तीन बच्चे हैं। दश वर्ष की शीला ने माँ-बाप से भोजन की कमी पर दार्शनिकता प्रकट करना सीखा है, अपने छोटे भाई सतीश को वह समझाती है और फिर दोनों का शंका-समाधान उनका बड़ा भाई राकेश करता है। वार्तालाप में बाल-मनोविज्ञान की रक्षा बड़े कौशल से की गई है। इनके वार्तालाप की पृष्ठभूमि में पड़ोसी संपन्न परिवारों के बच्चों के ढंग का रंग चढ़ाकर लेखक ने इन तीनों पात्रों का चित्रण बहुत कारुणिक कर दिया है। बच्चे भगवान को किस प्रलार समझें, उन्हें भगवान से आशा और सांत्वना मिले, यहीं पर इस एकांकी की चरम सीमा है—

शीला—भैया, तुम क्या माँगोगे राम जी से ?

रासेश—मैं ! मै तो यही माँगूँगा कि हमारे बाबू जी को अच्छा कर दो। वे............वे अच्छे हो जायँगे तो हमारे लिए मिठाई-कपड़े सभी कुछ ले आएँगे।

[सतीश और शीला राकेश की ओर देखते हैं। पश्चात, दोनों एक दूसरे की ओर देखते है।]

शीला—(कुछ सोचती हुई) ठीं भैया मैं भी यही माँगूँगी।

सतीश—चलो, चलो मैं भी यही माँगूँगा।

यहीं नाटक समाप्त होता है और दर्शक भी यही माँगँने लगत हैं।

यदि यह एकांकी बालकों के विद्यालय में अभिनय करने योग्य है, तो इसके बाद **'लेखक की पत्नी'** का अभिनय बालिका विद्यालय में होना

चाहिए। यह एकांकी पढ़कर मुझे सुदर्शन-कृत 'कवि की स्त्री' की याद आ गयी। कवि की स्त्री पतित हो जाती है, परंतु इस एकांकी में लेखक की पत्नी अपनी मालती और निरंजना जैसी सखियों के उद्योग से बच जाती है। वह अपने पति का महत्व समझने लगती है—

रेशमी साड़ी का मूल्य मैं समझ गई हूँ, मुझे अब खद्दर की साड़ी ही ला देना। (हाथ जोड़कर सजल नेत्र) मेरी अब तक की भूल के लिए क्षमा करो।

अँतिम एकांकी में ईसा भारतीय गुरु का मानवीय संदेश लेकर उसका अपनी जन्मभूमि में प्रचार करते दिखाये गये है। ईसा का तो एक शिष्य उन्हे क्रास तक पहुँचाता है, परंतु वह उसे भी क्षमा करते हैं और क्रास का दृश्य दिखाने के पहले यवविका गिर जाती है। बेचन शर्मा 'उग्र' का 'महात्मा ईसा' उनकी स्थायी साहित्यिक कृति है। परंतु उसका अभिनय तीन-चार घंटे से कम में समाप्त नहीं होता। इस एकांकी का अभिनय एक घंटे के भीतर समाप्त हो सकता है। ईसाई विद्यालयों में हो नहीं, अन्य विद्यालयों में भी इसके अभिनय से बालकों का मनोरंजन तो होगा ही, उससे वे उस पाठ की पुनरावृत्ति भी कर सकेंगे जिसे आधुनिक काल में सक्रिय रूप में महात्मा गाँधी ने हमें दिया है।

प्रेमनारायण जी ऐसे ही, इनसे भी अच्छे, एकांकी नाटक लिख सकें, यही मेरी शुभ कामना है।

—कालिदास कपूर

कर्म-पथ

पात्र

बृहस्पति—देवताओं के पूज्य आचार्य; उनके शुभचिन्तक, युद्ध में निर्देशक और नायक। वृद्धावस्था।

कच----आचार्य बृहस्पति का एकाकी पुत्र। युवावस्था में पदार्पण करता किशोर, जो स्वदेश-गौरव की रक्षा में मर मिटने को परम सौभाग्य समझता है।

स्थान

अमरावती में आचार्य का तपोवन।

पूर्वकथा

देव-दानव-युद्ध में स्वपक्ष की हार देख सुरेश ने पराजय का दोष आचार्य वृहस्पति के माथे मढ़ा और भरी सभा में उनका अपमान किया। वृद्ध आचार्य इस पर कुपित हो पद त्याग सभा-भवन से चले गए। परन्तु, दूसरे ही क्षण, स्थिति की भयङ्करता ने उन्हें देव-रक्षा और कल्याण के लिए कोई उपाय सोचने को विवश किया। उसी समय का दृश्य है।

[उन्नत मार्तण्ड के पतन का समय था;
यौवन-मद उतर चुका था दिनेश का;
उद्दण्डता न बची, गम्भीरता छा रही थी,
प्रखरता भी शान्त हो गई थी धीरे-धीरे—
ओज ज्यों परिणत हुआ हो माधुर्य में—
या दुख, क्षोभ, ग्लानि से रक्त-वर्ण हुआ हो
कुदशा देख अत्याचार-पीड़ित जनों की।

स्वाभाविक दीखते प्रकृति के दृश्य सभी—
वायु में शेष रवि-साहचर्य का अंश था,
पर निर्बल हुआ था उसके पतन से।
निर्जीव-से हुए प्राणीमात्र कुम्हलाए-से,
चर-अचर सभी उस ऋतु में ग्रीष्म की।
शान्त रविकर-निकर निरख साँस ली।
सन्तोष की उन्होंने मन में यों मुदित हो,
कठोर शासक के पतन से प्रसन्नता,
होती ज्यों प्रजाजनों को बड़े भाग्य से कभी।

जीवन-दान तब देने लगे वहाँ, अहा!
आश्वासना-सा वाटिका में सहृदय सभी;
तरु लताओं औ' तरुवरों को सींचते थे,
निज कर से उठाते उन्हें थे धीरे-धीरे,
रज धोते तब उनके मृदु पल्लवों की,

बहुत मीन धार से शीतल वारि को—
दलित अछूत पुत्रों को चुमकारता हो,
कोई ज्यों ; अथवा सुजन व्रण धो रहे हों,
आर्द्र भाव से पिघलकर, सतर्कता से,
किसी सुकोमल-कलेवरा के शरीर के।

शीतल निकुञ्ज की छाया में खड़े दीखते,
सुरगुरु थे, चिन्ता-घनाच्छादित रवि-से,
व्योम में ; विचारमग्न, सर झुकाए हुए,
व्यस्त, वे टहलते थे। आँधी सी उठ रही,
थी मस्तिष्क में उनके।]

सुरगुरु

स्थिति ऐसी में है क्या
कर्तव्य अब मेरा ? पद त्याग चुका हूँ मैं,
ठीक है ; पर जन्मभूमि का ऋण तो मुझे
चुकाना ही है अभी—कर्तव्यबद्ध तब था,
धर्मबद्ध अब भी हूँ मैं।

[सहसा देखने
लगते हैं वे सामने अति तीव्र दृष्टि से
एक टक क्षण भर।]

उऋण तो हो नहीं
सकूँगा कभी मैं अपने इस जीवन में
जननी के ऋण से; कुछ चाह भी नहीं—भार ही
हलका करना चाहता अति विनम्र हो,
स्वीकार कर कृतज्ञतापूर्वक उसे मैं।

[सोचते हुए कुछ लगते हैं टहलने।]

वृद्ध हो गया हूँ, हाय, शोक है इतना ही,
अपमान यह अन्यथा धो देता शत्रुओं
के शोणित से युद्ध में, सुरेश के समक्ष ही।

[उन्नत ललाट पर वारिबून्द झलके,
भृकुटी भी कुछ टेढ़ी हुई; तभी उनसे
शान्त रवि-करों ने आ विनय की यत्न से,
दुपल्लवों से छनकर—शान्त हो, शान्त हो।]

और बेटा इन्द्र!

[स्वर है आवेशरहित।]

आश्चर्य है महान, साहस हुआ इतना
तुझे कैसे, करे जो अपमान मेरा सभा-
मध्य? भय भी न हुआ तुझे मेरे शाप का?

शाप देकर तुझे हा, प्रसन्न न हूँगा मैं;

झोंक सकता आग में कभी पुत्र को पिता
दारुण दुख यह सहे चाहे कितने हो।

शिक्षा सब व्यर्थ हुई तेरी ; लज्जित हूँ मैं,
गुरु जनों ही का सम्मान करना न आया
जो तुझे, और कहलाता सुरराज है तू ?

[कर युगल मलने लगे खेद कर वे
बड़ा ; पोछकर बारिवृन्द दाहने कर से,
देखकर शून्याकाश की ओर, उन्होंने ली
एक बार लम्बी उसाँस कुछ निराश हो
मन में और फिर निज मस्तक झुका लिया।

निज सुपुत्र कच की याद आ गई उन्हें,
बिचार-तरङ्ग मानसाब्धि में लौटती थी।
हृदय कुछ हलका-सा हो गया उनका,
शान्त हुआ हो अशान्त सागर-वेग जैसे
झञ्झा के बाद ही। मन में कुछ मुदित हो,
क्षणभर पुलकित-से सोचने लगे वे]

सुपुत्र ही प्राणाधार होता वृद्ध पिता का
जगती पर ; सुशील शिष्ट देख उसे ही
निज जीवन जनक सार्थक समझते।
मेरा भी है आँख का तारा एक, सुमन-सा

खिला अहा ! सुगृह-वाटिका में मेरी;
प्रिय प्राणप्यारा है लाल वह जननी का
अपनी, देख-देख मुदित होती नित्य ही।

[लगे दीखने दृगो में प्रेमाश्रु दो उनके,
स्रवित होती पय-धार ज्यों मातृस्तनों से,
उमड़ती ममता है जब पुत्र के लिए।
पर कहा संयत स्वर में उन्होने—]

दूँगा बलिदान मैं उसे ही पूर्णाहुति में
जननी-प्रति-कर्तव्य-पालन सुयज्ञ की;
प्रण-पालनार्थ दया था बलिदान जैसे
हृदय-सा सुवन सहर्ष मोरध्वज ने।

जननी भी संतुष्ट हो जायगी लख इसे,
ऋणभार कुछ हलका हो जायगा मेरा,
और अमरेश का शङ्का-समाधान होगा—
न सोच सकेंगे तब फिर वे कभी—देते
न समुचित ध्यान गुरुवर ही हमारे।

[गर्व से ऊँचा हो गया मस्तक आचार्य का।
प्रणाम करता हुआ नत जन उठा
है निज शीश ज्यों ईश के समीप, अपने
को भूलकर अति हो भक्ति-भाव से त्योंही

निज भक्त-जन-प्रणत-पाल का ध्यान है
किया मन ही मन मोद-मग्न अतीव हो
सुविनम्र-भाव से सुर-कुलेश-पूज्य ने।

वर-रूप से माँगा उन्होंने निज ईश से—]

देव ! अभिलाषा है बस इतनी ही मेरी,
तव दासानुदास की, समझ यह सके
पुत्र मेरा—सौंपता हूँ तुम्हें सहर्ष इसे—
निज मातृभूमि के प्रति कर्तव्य अपना;
जीवित रहे तो उसे ही पूरा करने के
लिए- सफल कर कामना मेरी—अन्यथा,
भार बन जीना इसका व्यर्थ है सर्वथा।

[झुके रहे आचार्य क्षण भर आवेश में;
भक्ति से परिपूर्ण हुआ मानस उनका;
गद्गद्कण्ठ थे हुए वे, पुलकित भी;
नयन सजल दोनों कुछ मुँदे हुए थे।

आभास-सा हुआ उन्हें—साकार विष्णु जैसे
खड़े मुस्करा रहे हों समक्ष उनके।

कर कञ्ज दाहना, उठा फिर धीरे-धीरे;
वचन-मिस फूल झड़े ये हँसमुख से—
धन्य है वीरवर ! त्याग को तुम्हारे।

कर्तव्य-पालनादर्श सुझाया जगत को;
चिर ऋणी संसार समस्त तव रहेगा;
पूर्ण सफल होगी शुभ कामना तुम्हारी ।

पड़ती थीं उन पर लाल-लाल किरणें,
अनुराग से अनुरञ्जित हुआ हो जैसे
रवि भी; कर रहा हो आलिङ्गन मोद से ।

मन्द-मन्द बह रही थी वायु शीतल सी,
परसती वह बार-बार श्री चरणाम्बुजों को,
प्रसन्नता हो रही थी बड़ी मन में उसे.
स्व-सौभाग्य सराहती हो मानो मुदित हो;
अथवा प्रकट करती थी स्व भाव यही---
धन्य है तुम्हें वीरवर, त्याग को तुम्हारे ।

हिलते थे सुपल्लव शीश पर उनके
कुछ मृदुलता से, अति ही रुचिरता से;
समाती न हो प्रफुल्लता ज्यों अङ्ग-अङ्ग में;
अथवा कह रहे हो तरुवर उनसे—
धन्य है तुम्हें वीरवर ! त्याग को तुम्हारे ।

सजल नयन हुये वे, प्रेमाश्रु झलके
दृगांबुजों में । शुभ दर्शनार्थ श्रीवर के
उठाया उन्होंने निजानन गद्गद्कण्ठ हो ।

देखा—प्रिय परम सुवन आता दूर से,
अमित-सा उठा रहा था पग जैसे
गिन-गिन कर। दाहना कर था उसका
असि-मूठ पर; बाहर निकली हुई थी
धार कुछ; चमकती थी वह विद्युत-सी
घन श्याम में। चञ्चलता-सी घूम रही थी
नेत्र-दृष्टि, ढूँढ़ती थी किसी को, ढूँढ़ता ज्यों
फणी खोई निज मणि है विकलता से।

अटक गई दृष्टि उसकी तरुवर के
नीचे पूज्य खड़े थे जहाँ आचार्य उसके।
देखने लगा वह ओर उनकी ध्यान से;
गड़ी नेत्र ज्योति चरणों में; कर रहा हो
प्रणाम जैसे विनय से नत हो, अथवा
स्वागतार्थ पिता के आँखें बिछा दीं पुत्र ने।

निकले वे अशोक के नीचे से अशोक हो,
मुदित हो मोद जैसे; पैर बढ़ने लगे,
हाथ उठने लगे अपने आप उसके।

स्वजन-तुल्य राजीवलोचन राम से
मिलने को बढ़े थे भरत ज्यों, बढ़ा त्यों ही
कच भी वहाँ आतुरता से, विनम्रता से
छूने चरण-कमल जनक के अपने।

ललककर लगा लिया लाल को छाती से ;
चूम लिया अति प्रेम से सुभाल उसका।
छलक आया प्रेम-वारि उनके दृगों में ;
छलकता ज्यों अहा, नीरनिधि का नीर है
देख प्रिय शशि पूर्ण को राका निशा के।
किञ्चित् सङ्कोच से कहा पुत्र ने—]

कच

पिता जी !

[अति प्रेम से लगन से बहुत फेरते
हाथ थे वे शीश पर पुत्र के ; सुलझाते
थे कुछ उलझे हुए, कुछ बिखरे हुए
बाल उसके, हिलते हुए कर की—पड़ी
थीं झुर्रियाँ जिसमें औ' कम्पन विशेष था
उँगलियों से। रख दिया क्रमशः उन्होंने —
मुख अपना उसके शीश पर, चूम के
उसे फिर एक बार मूँद लिए अपने
नेत्र और तब फिर अचेत-से हो गए।

शान्ति मिली क्षण भर कच को भी इसमें
पर शीघ्र, विकलता से किंचित, उसने
सिमटते हुए कहा धीरे-धीरे]

कच

पिता जी !

[मुँदे नेत्र की गुरुवर के, झुकी दाहनी
पलक पर अटकी थी आधी बूँद---गिरी
थी आधी झपकने से नेत्र के धीरे धीरे,
उलझ गई बालों में औ' फिर गिरी।

सचेत हुआ कच शीघ्र ही, देखने लगा
वह पिता की ओर ; निकला विस्मय से
बड़े, उसके मुख से--]

कच

पिता जी ! आप अरे !
कर रहे हैं यह क्या ? दुखित हैं क्यों ऐसे ?

[स्वाभाविक सरलता से देखा आचार्य ने
उसकी ओर ; सुस्कंध पर था कर बायाँ,
दाहने में लिए हुए वाम कर उसका।
पूर्ण शांति मुखमंडल पर थी विराजती ;
हास्य की मंद रेखा भी खिंची हुई थी वहाँ।

देखते रहे कुछ देर वे मुख उसका ;
देखी एक बार निकली थी असि-धार जो ;
सोचते रहे कुछ, तब फिर गंभीर हुए,
अथाह सागर दीखता शांत ऊपर ज्यों।]

कच

धधक रही है आग भयानक उर में
मेरे, हे पिता जी, सुना है जब से. हुआ है
साहस सुरेश का इतना, सामने करे
जो आँख आपके।

[आचार्य की ओर देखता हुआ आवेश से]

रोके रहा अब तक मैं
अपने रोष को, अपने आपको—बढ़ती
क्रोधाग्नि में जला जा रहा हूँ स्वयं ; आज्ञा दें
मुझे अब आप ; तहस-नहस कर दूँ
सेना मैं अमरेश की।

[शांत दृढ़ता से संयत करके स्वर को]

छूकर आपके श्री-
चरण करता प्रण मैं - बाँध के सामने
ला करूँगा खड़ा तत्काल ही शक्रपाणि को,
अहंकारी भी सदा. कृतघ्नी भी बड़े जो।

[झुक गया युवक वह चरणों में पिता
के। शीघ्र उठ खड़ा हुआ वह ; देखा पिता
की ओर। काँप रहा था कच अति रोष से ;
लाल हो रहा था मुख उसका ; क्रोधाग्नि में

जलकर तप रहा था वीर, तपता है
सुस्वर्ण तपाने से जलती आँच पर जैसे।

देख रहे थे आचार्य भी पुत्र को अपने।
गम्भीरता छा रही थी मुख पर उनके ;
दिखलाई दे रही थी गर्व की एक आभा ;
अति पुलकित हो रहे थे वे सुन-सुन के
गर्वोक्ति प्रिय प्राण सम पुत्र की अपने।
बोले गंभीर गिरा---]

सुरगुरु

भूल जाओ बेटा, अभी
सभा के अपमान को ; उचित नहीं होगा
ऐसे समय फँस जाना गृह-कलह में।

कच

भूलें ? भूलने की बात यह कैसे पिता जी ?
बुझने की कैसे समुचित दंड दिए बिना,
आग जो की ? बहती रही हवा यह कहीं
यदि देश में, गुरुजन तब तो नित्य ही
इसी तरह अपमानित किए जायँगे।

सुरगुरु

ठीक है यह पर उचित नहीं तुम्हारे

लिए दंड देना उन्हें—दंड की बात भी
सोचना ; समय स्वयं दंड दे देगा उन्हें ;
सीख जायँगे वे अपने आप—उचित या
अनुचित है उनके औ' देश लिये क्या ?

कच

देखें पर कैसे अपमान गुरुजनों का
इन आँखों से ; देख-देख रक्त खौलता है
अन्यायियों को—निर्बल होंगे जो वे भी कभी
सहन न कर सकेंगे उद्दंडता ऐसी ।

सुरगुरु

परंतु सोचो जरा, तुम्हारी यह चेष्टा भी
तो कहायगी उद्दंडता ही ।

[मुसकराए
आचार्य यों कह । बोले फिर उसी स्वर में—]

बेटा, प्रसन्न हूँ मैं बड़ा साहस तुम्हारा
देखकर और न्यायप्रियता भी तुम्हारी ।
पर दंड देने का अधिकार नहीं कोई—
स्वकर्तव्य ही बस पालना चाहिए हमें ।

कच

कर्तव्य है मेरा क्या, सुझाएँ मुझे आप ही ।

दमकता मुख मंडल आलोकित हुआ
उसका दिव्य-प्रभा से ।

रविमंडल उसी
क्षण हुआ अस्त दूसरी ओर ; चकित हो,
मुग्ध-से कुछ पुलकित-से ज्यों मूँद लिए
अनुरंजित नेत्र अपने सूर्याश्व ने ।

मृदु मधुर कलरव छा गया नभ में ;
विहंगम-वृंद जयजयकार करते
जैसे हों मोद से । गौरव की उनके
दिव्य अनुभूति ने प्रेरित किया सभी का ।

पिता सम्मुख खड़े थे उसके । उठती थीं
अगणित, वृद्ध हृदय में सुरगुरु के
गर्व-गौरवयुक्त बलवती भावनाएँ ।
आंदोलित हृदय का द्वंद्व परिणत हो
चुका था सहज स्वर्गीय सुख में उनके ।
भव्य आभा-ज्योति-कलिका अहा ! खिल उठी ।
सरल अभिमान-जीवन से सिंचित-सी
होकर मुखोद्यान में ।

निमग्न हो गए वे
आनंदाब्धि में ; पा लिया चिरवांछित जैसे

कर्तव्य-पालन कर ही मुँह दिखाऊँगा,
लौटूँगा अमरावती में न अन्यथा कभी।

[गड़ गए नेत्र दोनों मुख पर पुत्र के ;
ले रहे थे थाह हृदय की उसके जेसे ।
दृष्टि में दृढ़ता थी, किंचित् उत्सुकता भी।
होता उथल-पुथल कुछ हृदयाब्धि में ;
मच रहा द्वंद्व था ममत्व में, कर्तव्य में ;
स्पष्ट थी मुख-पटल पर छाप जिसकी ।

अस्त हो चुका था सूर्य अर्द्ध, दीख रहा था
शेष रुक-रुककर देख रहा हो जैसे
कठिन संघर्ष वात्सल्य का और धर्म का।

निश्चल सी कुछ वायु थी, प्रकृति शान्त हो,
निःश्वास रोक सुनना चाहती हो मानो
हृदयोद्गार पिता-पुत्र के।

न हिलते थे
पत्र तरुवरों के, हतप्रभ चकित-से,
मुग्धमन दीखते थे सभी उस साँझ को।

सहज सरलता खेल रही थी कच के
मुख-प्रांगण में। निर्भीकता टपकती थी
नयनों से उसके! झलकता कर्तव्य था

निज प्रिय देश के प्रति ; चिह्न थे भक्ति के,
विनय के अपने जनकवर के लिए।

दूसरे ही क्षण सहज गर्व-गौरव से
उठ गई ग्रीवा ; तनकर खड़ा हो गया
युवक यों होकर अति मुदित मन में,
मनोनीत वस्तु मानों मिल गई हो उसे।
कर बद्ध करता बोला विनीत स्वर में—]

कच

पिताजी ! पूज्य मेरे ! अहोभाग्य समझूँगा
पालन यदि कर सका आज्ञा का आपकी ;
चिन्ता नहीं, प्राण पर खेलना पड़े मुझे—
हँसते-हँसते ही बलिदान यह होगा
संकेत मात्र पर आपके पुत्र आपका।

[आवेश में आ गया युवक वर वीर यों,
सघन कानन-कुंज में शयन करते
शिशु-सिंह को छेड़ दिया हो किसी से
अट्टहास करके —अपमान-सा उसका जैसे।
वीरभाव से, किंचित् दर्प से, गर्जन-सा
करने लगा।

नेत्रों में उस समय पिता के
गर्व था, उत्सुकता थी, कुछ अशांत-सी

त्योंही निज जनक पूज्य परम के अहा !
शुभाशीर्वाद की मंगलदायिनी ममता-
मय क्षमता अपार का पाकर सहारा
हिय-भूमि उर्वरा में गुरु-नेत्र-ज्योति की,
कर्तव्य-पालन पुनीत प्रिय सहज-सी,
भावना-ललित का मृदु बीज हो गया
अंकुरित उत्साह-जीवन के शुभ योग से।

खिल उठा मुख-किशोर खिलते सुमना
की प्रिय सरलता खिलती है स्पर्श में ज्यों,
उदित होते तमारि की प्रथम रश्मि के।

गर्व - गौरव - महान - भावना की जनना
हो नेत्रों में नाच उठी मूर्तिमान बालिका-
सी जैसे। पूछा मोमित शब्दों में युवक ने--]

कच

आज्ञा है क्या पूज्य पिता जी, अब मेरे लिये ?

[बोले गुरुवर तब गम्भीर स्वर में यों--]

सुरगुरु

जाओ तुम प्रात ही पास श्री शुक्राचार्य के,
दानवों के गुरुवर हैं जो, अति विज्ञ हैं
सञ्जीवनी विद्या में, सीखना उनसे यही।

करना उचित होगा इस समय मेरे
लिए क्या ?

[खीझकर पूछा पुत्र ने पिता से ;
स्वर में भी उसके किंचित् कठोरता थी।

मुस्कराए मन ही मन आचार्य ; नेत्रों में
उनके झलक थी वात्सल्य की, गंभीरता
थी स्वाभाविक स्वर में। बोले समझाने को—]

सुरगुरु

निज कर्त्तव्य-पालन बेटा. सहज नहीं ;
समझो पर्याय इसे असिधार-व्रत का।
जूझना पड़ेगा काल से. नित्य ही रहेगी
जान हथेली पर ; होंगे सफल फिर भी
असफल ही अथवा—कुछ निश्चित नहीं।

[कच देख रहा था ओर पिता की अपने
निर्भीकता से बड़ी, पर झुँझलाहट थी
चितवन में उसकी ; किंचित् व्यग्रता भी।
तभी आचार्य ने पुनः कहा अपने प्रिय पुत्र से—

सुरगुरु

प्रण करो कच ! वीरवर अतएव, हो
सकूँगा निश्चित मैं तभी, संतुष्ट भी। कहो—

अलौकिक अमरत्व-पद तभी उन्होंने—
भटकता जिसके लिए हा ! नरलोक है ;
जीवन भर चाहता पुत्र अपांग-सा ही
एकाकी ; निज समस्त पुण्य पुरातन तथा
चिरसंचित संपत्ति पैतृक के बदले।

मूँद लिए मुग्ध नेत्र दोनों अपने।
कर बद्ध कर दिए ईश-भक्ति-भावना
ने उनके। किया प्रणाम मन-ही-मन में ;
कृतज्ञता से अति, नतमस्तक हो गए।

कुछ क्षण बाद ही खुले फिर नेत्र दोनों
उनके भक्ति से, वात्सल्य से झलकने-सा
लगा, उत्सुक मानो, किंचित् नीर उनमें।
स्नेह की सरल दृष्टि अहा ! नाच रही थी
क्षीण रस-पर्त पर मुदित सी उनकी—
खेलती थी दीप-ज्योति भर अति मोद में,
जल-चादर पर, पूर्व समय में जैसे।

केलि-क्रीड़ा करने लगी सरल बालिका-
कल्पना तब रुचिर आंगन में मस्तिष्क के।
नेत्र-नीर-चादर पार देखा यों उसने—
शोभित है विजय-वैजयंती अहा ! गले
में विविध वर्णों की शुभ्र-सी प्रिय पुत्र के।

६८०५
पुस्तकालय

[उन्नत ललाट पर उसके मुकुट भी
विजय चिह्न-सा शोभित है सुवर्ण का ।

[illegible] हो गए वृद्ध ऋषिवर भी ;
मोह के कल्पित ताप मे अति विभोर-से ।

बढ़कर आगे पग एक, रक्खा दृढ़ता
से कर दायाँ शीश पर पुत्र के उन्होंने ।
तनकर कुछ फिर खड़े हुए वे ; बोले --
गर्व और प्रसन्नता के गभीर स्वर में—]

सुरगुरु

आशा थी प्रिय पुत्र तुझसे मुझे ऐसी ही ।
मत समझ परतु परीक्षा समाप्त हो
गई तेरी'। आरभ होगा उसका अबसे ।

देता आशीर्वाद प्रसन्न होके तुझे मैं--
वचन हों सत्य तेरे समस्त ; दृढ़ रहे
उन पर तू । विघ्न बाधाएँ सब नष्ट हों ।
सफलता स्वयं ही चेरी बने तेरी सदा ।

[दमक उठा मुख-मडल वर वीर का ।
जलद-पटल बेधकर निज शक्ति से,
शोभित होता है रवि-मंडल गगन में
जैसे कांति लेकर अपूर्व, तेज भी दूना,

व्यग्रता थी उल्लासपूर्ण उस हृदय में।]

कच

मार दूँगा लात समस्त संसार के सभी
प्रल भनों पर; जननी स्वभूमि के लिए
अर्पण कर दूँगा प्राण भी सहर्ष ही मैं।

जूझ जाऊँगा शत्रुओं से हँसते-हँसते;
तिल-तिल कट जाय चाहे देह अपनी,
नहीं परंतु पैर पीछे धरूँगा कभी मैं।

निश्चिंत रहिये पिता जी! पुत्र आपका हूँ—
तन में मेरे रहेगा रक्त एक बूँद भी
पालन स्वकर्तव्य का करता रहूँगा मैं।
लांछन-व्रण न लग सकेगा मरने के
बाद भी मेरे, यशः-शरीर पर आपके।
अवसर न होगा स्वजन परजन को
किंचित् भी परस्पर उँगली उठाने का।

[कर दाहना उठ गया तब ऊपर को
स्वयं ही कच का। प्रेरित किया हो मानों
प्रण-पूर्ति को प्रभु-प्रतिनिधि-स्वरूपिणी
परम शक्ति ने, स्थित रहती सदैव ही
हृदय-सिंहासन पर सदा प्राणियों के।

भूल जाओ तुम कुछ दिन के लिए--हाँ,
केवल थोड़े दिन के लिये ही, अपने को,
अपनेपन को, निज सुख को, ऐश्वर्य को।
नश्वर बस मानों संसार के वैभव को,
अथवा क्षणिक, चञ्चल अति, भूलो उसे।

सुनो करुण क्रन्दन अपनी माताओं का,
आर्त्तनाद हृदय - विदारक दलितों का;
बहते देख चुके हो अनेक बार आँसू
खून के; अब तो उठो, कर्तव्य निज सोचो
स्वदेश के प्रति तुम। माता ताक रही है
ओर तुम्हारी ही आज आँसू भरी आँखों से-
आशा हो उसकी, तुम ही आशा के प्राण हो
सन्देश है मेरा तुमसे, नवयुवकों से,
निज स्वदेश - प्रासाद के प्रमुख स्तभों से।

[भारत के भयङ्कर युद्ध में काँप उठे
थे सुन भीमनाद वर वीर भीष्म का ज्यों
कौरवदल - नायक सुरथी महा सभी,
वृद्ध सिंह की गर्जना घोर सुन काँपते
इठलाते बल-मद में शृगाल नव-से—
चौंक पड़ा कच यों वृद्धावेश को, काँपती
वृद्ध क्रोध की, प्रतिमूर्ति देख अंगार-सी।

सोचा था उसने, होगा आदेश जूझने का
रणभूमि में, काटने का निज शत्रुओं को;
अरमान निकल सकेगा धधकता-सा
विनाशकारी मूल से मुखीज्वाला की ज्वाला
तरल-सा। खिन्न हो किञ्चित् बोला पिता से—]

कच

सिखाएँगे रिपु को ही विद्या-सञ्जीवनी वे,
काटेंगे हाथ से डाल अपनी क्या स्वयं ही?

[मौन मुस्कराहट की गर्वमयी आभा
क्षण एक को छाई मुख पर आचार्य के;
बोले वे मुदित स्वर में—]

सुरगुरु

सिद्धि यही विद्या की।

[शङ्का की फिर पुत्र ने-- -]

कच

हानि सहकर भी?

सुरगुरु

गुरु-ऋण चुकाना है बढ़कर हानि निज से;
महती मनुष्यता सिखाती यही है हमें।

कच

जो आज्ञा; कर्मपथ होगा यही अब मेरा।

[झुक गया पुत्र तभी चरणों में पिता के।
पुलकित हो अति वृद्ध पिता ने काँपता
कर दाहना रखा मस्तक पर उसके।
आँखों में उनकी दोनों आँसू भर आये थे।]

यवनिका)

रोगी के बच्चे

[स्थान

मकान के बाहर का बरामदा जो गली से लगभग चार फीट ऊँचा है। दो सीढ़ियाँ चढ़कर बरामदे में पहुँचना होता है। वहाँ एक तख्त पड़ा है जो बिल्कुल साफ है; जान पड़ता है, सबेरे ही धोया गया था।

गली के किनारे मकान होने से बरामदे में हर समय चहल-पहल रहती है। गली के दोनों तरफ ऊँचे मकान हैं। इससे कड़ी धूप की तपन से झुलसा हुआ आदमी वहाँ पहुँचकर आराम की साँस लेता है।

आसपास घना बसा मोहल्ला होने के कारण गली में एक-न-एक सौदा बेचनेवाला बराबर आता ही रहता है। फल, मिठाई, खिलौने, गाने की किताबें, मतलब यह कि जरूरत की सभी चीजें लोग दिन भर बेचते फिरते हैं।

उस गली में भिखारियों की भी कमी नहीं रहती। कभी कोई बूढ़ा अपाहिज आता है, कभी कोई जटाधारी बाबा। आधे वस्त्र पहने भिखारिनें भी गोद में बच्चा लिए या उँगली पकड़े इक्का-दुक्का दिखाई दे जाती हैं।

कुत्तों, गदहों, गैयों और बकरियों का गली में ताँता बँधा रहता है। इनके साथ वहाँ खेलनेवाले लड़के और लड़कियाँ अपनी शक्ति और सामूहिक एकता का ध्यान करके अवसर के अनुकूल व्यवहार करती हैं।

समय

अप्रैल का अंतिम रविवार जब लखनऊ में काफी गर्मी पड़ती है और लू भी चलने लगती है। जो बाबू लोग रोज दफ्तर में आराम से खस की टट्टियों और पंखों का आनंद लेते थे, आज घर के तपते कमरों में पड़े हैं। धूप की चमक से बचने के लिए दरवाजे जब वे बंद करते हैं तो पसीना परेशान करता है और जब दरवाजे खोल लेते हैं तो आँख सामने नहीं की जाती।

बच्चों के लिए यह समय स्वतंत्रता का है। बाबू जी कमरे में आराम कर रहे हैं, माता जी दहलीज में लेटी हैं, अब उन्हें कोई टोंकनेवाला नहीं है। दो-तीन घंटे तक उनकी बुलाहट नहीं हो सकती, यह वे जानते हैं।

पात्र

शीला—

रोगी की पुत्री। दस वर्षीय बालिका। दुबली-पतली। रंग खुलता हुआ। चेहर-मोहरा साधारण आँखें और बाल कुछ भूरापन लिए हुए। रंगीन फिराक और सफेद जाँघिया पहने है।

सतीश—

सात वर्षीय दुबला-पतला बालक। रंग बहन शीला से मिलता जुलता। एक बनियायन और नेकर पहने। स्वभाव से सीधा, बुद्धि

में अवस्था से अधिक चतुर और समझदार।

हरी—

ग्यारह-बारह वर्ष का लड़का, जो पड़ोस के धनी लाला का पुत्र है। अच्छे हाथ-पैर ; चंचल, तेज और निडर। रंग साँवला है ; मुख पर कांति है जो देखनेवाले का ध्यान आकर्षित करती है।

दृश्य

कुछ लड़कों के साथ हरी गली में खेल रहा है। कभी वह एक से लड़ बैठता है, कभी दूसरे को पीट देता है। शीला और सतीश को उसकी प्रकृति का पूरा परिचय है। शायद इसीलिए दुबले-पतले ये दोनों भाई-बहन उनसे डरकर ऊपर बरामदे में आकर खड़े हो गए हैं। और तखत पर बैठकर दो-फीट ऊँचे छज्जे से झाँक रहे हैं। सामने गली में खिलौनों की डलिया लिए एक बूढ़ा बैठा है। लड़के उसे घेरे हुए हैं।]

सतीश

(बहन शीला के कान के पास मुँह करके) कितने अच्छे-अच्छे खिलौने हैं इसके पास !

शीला

अच्छे तो हैं, पर ये टूट बहुत जल्दी जाते हैं; बाबू जी ने उस दिन कहा था। याद है ?

सतीश

याद है। कहा था—किताबों की अच्छी-अच्छी तसवीरें देखा करो हर रोज।

शीला

यह भी तो कहा था कि तसवीर देखनेवाले लड़के राजा होते हैं।

सतीश

हाँ, कहा था। मुझे तो वे राजा भैया पुकारते भी हैं।

[इसी समय हरी पास खड़े लड़के को बूढ़े पर ढकेल देता है और स्वयं फुर्ती से पीछे हट जाता है। गिरनेवाले लड़के को बूढ़ा झकझोर देता है। शीला और सतीश बात करना बंद करके खिलौनेवाले की तरफ देखते हैं।]

हरी

(बनावटी क्रोध करके) किसने धक्का दिया था इस बच्चे

का ? अभी बूढ़े के चोट लग जाती तो ?

मोहन

तुम्हीं ने तो धक्का दिया था।

हरी

मैंने ? (कुछ आगे बढ़कर) झूठ बोलता है ?

बूढ़ा

भैया लड़ो न। (खिलौनों की डलिया उठाकर सिर पर रख लेता है) जाओ, खेलो सब मिलकर।

शीला

(धीरे से) हरी बड़ा शैतान है ; सबसे लड़ता है

सतीश

बड़ा बुरा है वह ; बूढ़े को सताता है। मैं कभी नहीं सताता किसी को।

शीला

तू तो राजा है।

सतीश

राजा लोग भी तो लड़ते हैं आपस में।

शीला

वे राजा भैया थोड़ी होते हैं। तू तो राजा भैया है।

सतीश

बूढ़ा चला गया ; अबकी आयगा तो मैं भी खिलौने लूँगा।

शीला

मैं भी बड़ी सी गुड़िया लूँगी।

[एक फलवाला आता है। संतरे, केले, ककड़ी, कसेरू, सभी कुछ उसके पास है। सुधा उसकी आवाज सुनकर दौड़ती हुई आती है।

सुधा—

आठ-नौ वर्ष की बालिका जो हरी की छोटी बहन है। धनी की कन्या होने के कारण लाड़-प्यार से पली है। रंग साँवला है, नाक-नकस मोटा और अनाकर्षक रेशमी फिराक के ऊपर महीन धोती पहने है। स्वभाव से लड़ाका, चिड़चिड़ी और हठीली है।]

सुधा

केलेवाले ! ओ केलेवाले ! एक केला दे दे। कितने का है ?

फलवाला

(केला देकर) दो पैसे का बिटिया।

सुधा

(इकन्नी फेंककर) दो पैसे की ककड़ी भी दे।

[फलवाला दो छोटी छोटी ककड़ियाँ देता है। हरी दो केले, दो संतरे और चार ककड़ियाँ उठा लेता है और दाम देता है तब वह को चिढ़ाता हुआ खाने लगता है। और भी दो-एक लड़के फल लेते हैं।]

सुधा

मुझे भी संतरा दे!

हरी

(सींगा दिखाकर) ले सींगा। तूने एक केला लिया, मैंने दो; तूने दो ककड़ी लीं, मैंने चार। और दो संतरे घाते में। (जल्दी जल्दी खाता और मुँह चिढ़ाता है। फिर संतरे का छिलका उसकी तरफ फेंककर) ले संतरा!

[सुधा रोती हुई घर चली जाती है। हरी उसी तरह खाता रहता है।]

सतीश

संतरे बड़े मीठे और रसदार होते हैं। उनसे ताक़त आती है।

शीला

हाँ, तभी बाबू जी संतरा रोज खाते हैं।

सतीश

मुझे तो एक फाँक रोज देते हैं

शीला

मुझे भी। (हरी की तरफ इशारा करके) हरी दो संतरे अकेले खा गया! सुधा बिचारी रोने लगी।

सतीश

अकेले नहीं खाना चाहिये कुछ—उस दिन माँ ने बताया था।

शीला

मैं तो सब चीजें तुझे देकर खाती हूँ। तू कभी देता है, कभी नहीं देता।

सतीश

जरा सी जो चीज मिलती है, वह तुझे नहीं देता; बहुत मिलती है तो देता हूँ।

[एक फेरीवाला कपड़े की गठरी पीठ पर लादे आता है और निकल जाता है। लड़के उसकी ओर देखकर कानाफूसी करते हैं। कपड़ेवाला दूर निकल जाता है तो हरी आवाज देता है—कपड़ेवाले! ओ कपड़ेवाले! फेरीवाला लौटता है। पास आकर पूछता है—किसने बुलाया? हरी हँस पड़ता है; उसी के साथ सब हँसने लगते हैं। कपड़े वाला क्रोध से घूरता हुआ लौट जाता है।]

शीला

अम्मा ने कहा था—साड़ी मँगा दूँगी। सो रही हैं, नहीं तो आज ले लेती।

सतीश

मेरे लिये भी कमीज का कपड़ा लेने को कहा था।

शीला

अबकी आवेगा तो सब ले लेंगे।

सतीश

माँ तो कहती हैं, कपड़े मिलते ही नहीं। यह तो गट्ठर लादे है। चाहे जितने ले लो।

शीला

हाँ, हैं तो बहुत कपड़े इसके पास।

[एक गधा आता है। लड़के उसे ईंट-पत्थर से मारते हैं। गधा लँगड़ाता हुआ चला जाता है।]

सतीश

बड़े बुरे हैं ये लड़के। बेचारे गधे को मार रहे हैं।

शीला

उसके भी चोट लगती होगी, इन लड़कों को नहीं मालूम।

सतीश

बेचारा गधा मन में रोता होगा।

शीला

अगले जन्म में ये लड़के गधे होंगे और गधा होगा लड़का। तब वह भी इन्हें मारेगा; इनसे बदला लेगा।

सतीश

तब ये लोग भी खूब रोएँगे।

[गन्ने का रस बेचनेवाला आता है। सारे मुहल्ले के लड़के धीरे-धीरे उसके पास जुट आते हैं। इसी समय घर से राकेश बाहर आता है।

राकेश —

रोगी का बड़ा पुत्र है। अवस्था बारह-तेरह वर्ष। रंग साँवला, मुख पर दीनता की छाप से युक्त भोलापन जो देखनेवाले के हृदय में स्नेह नहीं, दया उमड़ाता है। छोटे-छोटे रूखे बाल जो काफी दिनों से कटे नहीं जान पड़ते हैं। शरीर दुबला-पतला है, जिसने समय से पहले ही काफी कष्ट सह लिये है। खाकी नेकर के ऊपर आधी बाँह की कमीज पहने है जो न बहुत उजली है और न मैली ; जिसकी सिकुड़नों से पता चलता है कि वह घर पर ही धोई गई है।

राकेश की दृष्टि गन्ने वाले पर पड़ती है; फिर वह भाई-बहन की तरफ देखता है। क्षण भर सोचता रह जाता है। पश्चात, तखत पर बैठ कर कहता है—आओ, यहाँ बैठो। शीला और सतीश दोनों उसके पास जाकर बैठ जाते हैं। तीनों कुछ समय तक चुप रहते हैं।]

राकेश

बाहर की कोई चीज नहीं खानी चाहिये; उस पर मक्खियाँ भिनभिनाती हैं। खानेवाले बीमार हो जाते हैं।

सतीश

बाबू जी तो बहुत दिनों से बीमार हैं। उन्होंने क्या बाहर की चीज खाई थी ?

राकेश

(कुछ उत्तर न सोच पाकर) हाँ और क्या !

शीला

ये लड़के तो रोज बाहर की चीज खाते हैं। ये कभी बीमार नहीं होते।

राकेश

होते क्यों नहीं ? तुम्हें याद नहीं है, उस दिन हरी खाट पर पड़ा चिल्ला रहा था ?

सतीश

भैया, उसके तो चोट लग गई थी। (जरा-सा उचककर गली की तरफ झाँकता है) गन्ने का रस होता खूब मीठा है। कल बाबू जी ने एक गँडेरी मुझे दी थी।

शीला

उसमें बर्फ पड़ जाय तो कितना ठंडा हो जाता है !

सतीश

हमारा शरबत भी मीठा होता है, पर उसमें बरफ नहीं डाली जाती कभी।

राकेश

बरफ कितनी गंदी होती है, यह भी तो बाबू जी ने उस दिन समझाया था तुम्हे ?

शीला

सब लोग बरफ खाते हैं, हम माँगते हैं तो कहते हो गंदी होती है।

सतीश

बाबू जी ने आज अपने दोस्त के लिये भी तो बरफ मँगाई थी।

राकेश

(बात बदलकर) तुमने किताबों में छपी तस्वीरें देखी हैं ? कितनी बढ़िया हैं ?

सतीश

मुझे तो हलवाई की दूकान वाली तस्वीर अच्छी लगती है।

शीला

हाँ, कितने बड़े बड़े थालों में मिठाई सजा रखी है उसने अपनी दूकान पर।

सतीश

हमें तो बहुत दिनों से मिठाई नहीं मिली है खाने को।

राकेश

मिठाई खाने से दाँत खराब हो जाते हैं।

सतीश

थोड़ी देर पहले हरी ने खाई थी, सुधा ने खाई थी। सभी रोज खाते हैं।

[राकेश कुछ उत्तर नहीं देता, सुधा और सतीश दोनों उसकी ओर ताकते हैं। फिर एक बार गन्ने वाले को उचककर देख लेते हैं। राकेश अब भी चुप है।]

सतीश

(पुनः उसी स्वर से) बहन के दाँत तो खराब ही हैं। इन्होंने कब मिठाई खाई थी ?

शीला

मैंने तो बहुत दिनों से चक्खी भी नहीं है मिठाई। गुड़ कभी कभी मिल जाता था। अम्माँ कहती हैं—गुड़ भी अब नहीं मिलता।

सतीश

हरी, सुधा, मोहन, सब शकर की मिठाई खाते हैं। हमें कभी गुड़ भी नहीं मिलता।

शीला

ऐसा क्यों है भैया ?

राकेश

आजकल बहुत मँहगी है।

सतीश

मँहगी ! मँहगी क्या भैया ?

राकेश

आजकल जरा सी चीज खरीदने में बहुत से रुपए देने पड़ते हैं।

[गली में गन्नेवाले के चारो तरफ लड़के-लड़कियों की भीड़ है। एकाएक बड़े-बड़े सींगों वाली एक गाय आकर गन्ने के चीफुरों में मुँह मारती है। रसवाला उसे मारकर भगाता है, डर कर लड़के भी भागते हैं। राकेश, शीला, सतीश तीनों तखत से उठकर खड़े हो जाते हैं और जीने के ऊपर खड़े होकर देखने लगते हैं। थोड़ी देर बाद आकर फिर बैठ जाते हैं]

सतीश

गाय है अच्छी, पर दुबली-पतली है।

शीला

हमारी तरह उसके भी सब हड्डियाँ निकली हुई हैं।

राकेश

इन्हें भी आजकल पेट भर खाने को नहीं मिलता है।

सतीश

दूध तो देती हैं ये। हम बाबू जी के लिए रोज लाते हैं।

शीला

मैं भी जब बीमार पड़ी थी, तब मैंने दूध पिया था।

राकेश

मैंने भी उस दिन पिया था जब वह काली बकरी घर में बंद कर ली थी और अम्मा ने उसका दूध दुह लिया था।

सतीश

मुझे पहले मिलता था दूध आधी कटोरी; अब नहीं मिलता।

शीला

अब तो तू बड़ा हो गया है। दूध तो बच्चे पीते हैं।

सतीश

सात-आठ बरस का ही तो हूँ। कहती है, बड़ा हो गया।

राकेश

दूध आजकल अच्छा नहीं मिलता; निरा पानी होता है। ऐसे दूध से न पीना अच्छा।

शीला

अम्मा कहती थीं, सबको दूध तब मिले जब बहुत से रुपए हों। पर हमारे पास रुपए नहीं हैं, हम गरीब हैं।

सतीश

जिसके पास रुपए न हों वह गरीब होता है ?

शीला

और नहीं तो क्या ! तभी तो अम्मा कहती थीं कि गरीबों के लड़कों को पैसे नहीं खरचना चाहिए।

राकेश

तुमने देखा है कभी मुझे एक पैसे की चीज खरीदकर खाते ? ऐसा ही तुम लोग भी करो।

सतीश

दूसरों को रुपए कहाँ से मिल जाते हैं ?

शीला

उनके बाबू जी लाते हैं। हमारे बाबू जी बीमार हैं बहुत दिनों से ; काम नहीं कर सकते।

सतीश

तो चलो हम लोग ले आवें। कहाँ मिलेंगे रुपए ?

राकेश

हम लोगों को नहीं मिलेंगे ; हम छोटे हैं अभी।

सतीश

छोटे हैं ! अरे, सब काम तो करते हैं हम ! दूकान से राशन लाते हैं, चक्की से आटा पिसाते हैं, तरकारी लाते हैं, दूध-दही लाते हैं, तब क्या वह काम नहीं कर सकते जिसमें रुपए मिलें ?

राकेश

(फीकी हँसी हँसकर) रुपए उन्हीं को मिलते हैं जो (हाथ ऊँचा करके) इतने बड़े हो जाते हैं।

सतीश

बहन कहती है मैं बड़ा हो गया ; पर इतना बड़ा होने में तो बहुत दिन लगेंगे।

राकेश

हाँ, तभी रुपए मिलेंगे।

सतीश

(कुछ देर सोचकर) देता कौन है रुपए ?

राकेश

क्या करोगे यह जानकर ?

सतीश

उससे चलकर कहेंगे, हमारे बाबू जी बीमार हैं। उनके रुपए हमें दे दो।

राकेश

रुपए राम जी देते हैं। उनके यहाँ एक का रुपया दूसरे को न ीं दिया जाता।

शीला

राम जी कौन ? कहाँ रहते हैं ?

राकेश

(किताब खोलकर एक तसवीर दिखाता हुआ) यह देखो हैं राम जी। यही सबको रुपए देते हैं।

[सतीश और शीला बड़े ध्यान से तसवीर देखते हैं। राकेश उनकी दृष्टि बचाकर गन्नेवाले की तरफ देखता है। गन्नेवाला धीरे-धीरे जाने लगता है। जाते-जाते आवाज देता है—रस गन्ने का। शीला और सतीश दोनों चौंक पड़ते हैं।]

सतीश

रहते कहाँ हैं ये ?

राकेश

(ऊपर उँगली उठाकर) बादल में, आसमान में रहते हैं।

[शीला और सतीश ऊपर देखने लगते हैं। जब छत के अतिरिक्त कुछ नहीं दिखाई देता तो दोनों फिर तसवीर देखने लगते हैं।]

सतीश

(तसवीर पर ही दृष्टि गड़ाए हुए) बादल में रहते हैं राम जी! (राकेश की ओर देखकर) हवाई जहाज पर जा सकते हैं उनके पास हम ?

राकेश

राम जी किसी से मिलते नहीं। उनसे जो कोई कुछ माँगता है दे देते हैं।

शीला

कैसे माँगें ?

राकेश

वह जो ठाकुरद्वारा है, वहाँ चलो। हाथ जोड़ो, आँख मूँदो। तब रामजी से जो कुछ माँगोगे, मिल जायगा।

शीला

मैं तो अपनी गुड़ियों के लिए कपड़े माँगूँगी और अपने लिए अच्छी साड़ियाँ।

राकेश

गहने नहीं माँगेगी तू ?

शीला

गहने तो अम्मा कहती हैं, ससुराल से मिलेंगे मुझे।

सतीश

मैं तो रुपए माँगूँगा खूब। रुपए से मिठाई, फल, कपड़े सभी मिल जाते हैं।

शीला

कब चलोगे ठाकुरद्वारे ?

राकेश

उस समय चलना जब कोई न देखे। किसी ने देख लिया तो फिर रामजी कुछ न देंगे।

शीला

भैया, तुम क्या माँगोगे राम जी से ?

राकेश

मैं ? मैं तो यही माँगूगा कि हमारे बाबू जी को अच्छा कर दो। वे......वे अच्छे हो जायँगे तो हमारे लिए मिठाई, कपड़े सभी कुछ ले आयँगे।

[सतीश और शीला दोनों राकेश की ओर देखते हैं। पश्चात्, दोनों एक दूसरे की ओर देखने हैं।]

शीला

(कुछ सोचती हुई) ठीक है भैया, मैं भी यही मागूँगी।

सतीश

चलो, चलो, मैं भी यही मागूँगा।

[तीनों जाते हैं।]

लेखक की पत्नी

पात्र

राजीव—लेखक

कांति—राजीव की पत्नी

शची—राजीव की पुत्री

मालती—कांति की सखी

निरंजना—कांति की सखी

स्थान

लेखक के मकान का एक कमरा

[स्थान—

अठारह फीट लंबा और बारह फीट चौड़ा कमरा। बीच में सिर्फ चटाई बिछी है। उस पर लिखने की छोटी डेस्क दाहनी ओर है जिसके ऊपर एक कोने पर दवायत रखी है और दूसरे पर पेपरवेट। डेस्क पर लाल ब्लाटिंग बिछा है। राजीव उस पर कागज रखे लिख रहा है। उसके बाईं ओर तीन-चार किताबें, दो-तीन पत्रिकाएँ और एक कागजों से भरी फाइल है। उसी के पास हाथ से झलने का पंखा पड़ा है। चटाई के दूसरे किनारे पर शची बैठी है।

दीवारों की सफेदी मैली हो चली है। उस पर कोई चित्र नहीं है। सामने की दीवाल पर बीचोबीच में एक क्लाक टँगी है। उसके नीचे एक अलमारी है जो बंद है पर ताला नहीं लगा है। उसकी कुंडी के सहारे एक कुर्ता लटक रहा है। अलमारी के दरवाजे सादे हैं।

क्लाक के दोनों ओर दो छोटी छोटी खिड़कियाँ है जिन पर काले परदे पड़े हैं। तेज गर्म हवा के चलने से वे बारबार उड़ रहे हैं। दाहनी ओर की खिड़की के नीचे एक तिपाई पर सुराही रखी है जिस पर शीशे का गिलास ढका है।

कमरे के दाईं और बाईं ओर एक-एक द्वार है। लेखक की ओर का दायाँ द्वार घर से बाहर और बायाँ भीतर जाने के लिए है।

समय—

जून का महीना। दिन के दो बजे हैं। कड़ाके की गर्मी पड़

रही है और लू का जोर खूब बढ़ा हुआ है। कमरे में बड़ी तपन है और जरा जरा सी देर में पंखा झलना पड़ता है।

राजीव—

तीस वर्ष की अवस्था। खुलता हुआ गेहुआँ रंग। बाल घुँघराले पर कान के पास दोनों ओर खिचड़ी हो चले हैं। मुख पर गंभीरता मिश्रित मलिनता है। इकहरा शरीर, पर भुजाओं की मछलियों से जान पड़ता है कि बहुत दिन पहले कुछ कसरत की थी। मोटी धोती बंगाली ढंग से बाँधे और सैंडोकट बनियान पहने है। आँख पर चश्मा है काले फ्रेम का जो ज्यादा अच्छा नहीं लगता। कभी दाहने हाथ से पंखा झलता है कभी बाएँ से और क्षण भर रुक कर फिर लिखने लगता है।

शची—

दस वर्षीय बालिका। रंग गेहुआँ, आकृति सुन्दर। मुख पर भोलापन और सरलता है; परंतु हँसती कम है। एक फिराक और जाँघिया पहने है। मुख पर लाल टिकुली की बिंदी है। हाथ में रँगीन चूड़ियाँ हैं। स्लेट और किताब लिए एक छोटी चौकी सामने रखे बैठी है। पढ़ने लिखने की ओर उसका ध्यान कम है। पिता की ओर बार बार देखती है जैसे कुछ कहना चाहती है।]

राजीव

(लिखते लिखते रुककर अँगड़ाई लेता हुआ) **शची ! पानी तो ला बेटी !**

[बाएँ हाथ में पंखा लेकर झलने लगता है। शची उसकी ओर देखती हुई उठती है। सुराही से गिलास भरकर देती है। राजीव पानी पीता हुआ उसकी ओर देखता है।]

शची

(*धीरे से*) पिता जी !

राजीव

(*गिलास उसकी ओर बढ़ाकर*) क्या है बेटी !

[शची कुछ कहती नहीं। गिलास सुराही से धोकर उसे ढक देती है और लौट कर अपनी चौकी के पास खड़ी हो जाती है।]

राजीव

(*मुस्कराते हुए*) क्या बात है शची ?

शची

(*सकुचाते हुए धीमे स्वर में*) माता जी को आप............वे रोती क्यों रहती हैं।

राजीव

(*चौंककर परंतु किंचित उदासीनता से*) मैं तो किसी को भी नहीं रुलाता बेटी ! (*मुस्कराता हुआ*) तुम्हीं को देखो......कितना प्यार करता हूँ मैं ! माता जी तेरी रोज मारती हैं तुझे ; (*हँसकर*) बता, कभी मारा है......मैंने ?

शची

(*ध्यान से सुनती हुई*) वे नाराज क्यों रहती हैं आपसे, मुझसे, सबसे ?

[कांति का बाएँ द्वार से प्रवेश।

कांति—

राजीव की पत्नी। लगभग पचीस वर्ष की अवस्था। गोरा रंग नाक-नक़्श सुन्दर, पर आवश्यकता से कुछ अधिक स्थूल जिससे शारीरिक आकर्षण कुछ कम हो जाता है। मुख पर लाल बिंदी खिलती है; माँग भरे। बढ़िया इकलाई की धोती पहने है; रेशमी जंपर। पैर में चप्पल जैसे कहीं जाने को तैयार हो।]

शची

(कांति की ओर देखकर) कहाँ जाती हो माता जी! हम भी चलेंगे।

कांति

तू रहने दे आज; फिर ले चलूँगो।

[राजीव एक बार उसकी ओर देखकर कलम उठा लेता है और लिखने लगता है, पर कलम आगे नहीं चलती। दो-चार शब्द काटकर कनखियों से पत्नी की ओर देखता है।]

शची

(कांति के समीप जाकर) नहीं माता जी! मुझे भी ले चलो अपने साथ।

कांति

(किंचित कठोरता से) कह दिया, एक बार, आज मत चल। (कुछ रुक कर, राजीव की ओर देखते हुए जैसे उसे ही सुनाना

चाहती हो) जायगी तू.........कपड़े भी हैं ठीक तेरे पास ?

[शची सहमकर चुप हो जाती है और पिता जी की ओर देखती हुई आकर अपनी जगह बैठ जाती है। कांति पुत्री पर एक दृष्टि डालकर राजीव की ओर देखने लगती है। राजीव सर उठाकर अपराधी की भाँति उसकी ओर ताकता है। कांति दूसरी ओर मुँह फेर लेती है। शची कभी माता की ओर देखती है और कभी पिता की ओर। वातावरण क्षण भर के लिए स्तब्ध हो जाता है।]

राजीव

(अधीन स्वर में) क्या एक भी फिराक नहीं है इसके पास ठीक ?

कांति

(उसकी ओर देखती हुई) पंचासों बनवा दी हैं न तुमने ? *(कुछ रुककर शची की ओर मुँह फेरकर)* होती तो किसी और के लिए रख लेती मैं ?

राजीव

(साहसपूर्वक) अभी उस दिन तो बनीं थीं दो ?

कांति

मोटी फिराक पहनाकर मैं नहीं ले जा सकती इसे अपने साथ। *(शची की ओर देखकर)* यहीं रहना ; आती हूँ मैं थोड़ी देर में।

[शची सर नीचा कर लेती है ; कांति बाहरी द्वार की ओर बढ़ती है। राजीव बेटी की तरफ देखने लगता है।]

राजीव

(*कुछ दृढ़ता से*) उसे भी लेतो जाओ साथ अपने; मेरा कहना मानो।

कांति

(*मुड़कर सतेज*) तुम्हारा कहना मानकर ही तो यह दशा हुई मेरी और इसकी भी।

राजीव

(*उसे शांत करने का प्रयत्न करता हुआ*) जो कुछ होना था, हो गया। अब इस बेचारी का क्यों मन मारती हो?

कांति

मन मारकर नहीं कटेगी तो क्या सुख से कटेगी जिंदगी तुम्हारे साथ किसी को?... ..... इससे तो मुझे .....।

राजीव

(*झुँझलाकर*) अच्छा भाई, क्षमा करो। लाख चाहता हूँ कि तुम्हें प्रसन्न रखूँ; पर भाग्य ही खोटे हैं मेरे तो क्या करूँ?

कांति

भाग्य तुम्हारे क्यों, मेरे फूटे हैं और मेरे साथ फूट गए इसके भी।

शची

(*एक बार माता की ओर देखकर राजीव से*) पिता जी, मैं नहीं जाऊँगी कहीं।

राजीव

(आर्द्र स्वर में) न, बेटी, तू जरूर जायगी अभी। *(पत्नी की ओर देखकर)* बता सकती हो कहाँ जाना है तुम्हें इस समय ?

कांति

(आतंकित होकर सीधे ढंग से) माधवी के यहाँ जा रही हूँ। कीर्तन है ; सेठ जी कह गये हैं।

राजीव

कौन ? सेठ लालचंद ? *(कुछ सोच में पड़ जाता है)* जब मैं बाहर था, तब यहाँ बहुत आता था ; वही न ?

कांति

(कुछ संकोच से) हाँ, कभी कभी वे आया करते थे। अक्सर उनके यहाँ कथा-वार्ता होती रहती है। आज भी कीर्तन है।

राजीव

पर मुझसे तो नहीं कहा उन्होंने ?

कांति

वे जानते हैं कि ऐसे लोग कहीं आने-जाने के नहीं। सिर्फ दुनियादारी निभाने को कह गये हैं—उन्हें भी भेजना। पर कपड़े तो………… ।

राजीव

(आवेश में) तब आज मैं जाऊँगा जरूर और जाऊँगा

अपने खद्दर के ही कपड़ों में। (*पुनः शची की ओर देखकर*) जरा देर रुक सकती हो ? (*उठता हुआ*) अभी शची के लिए फिराक लाया मैं। (*अलमारी की कुंडी से कुरता उतारकर पहनता हुआ*) जाना मत मेरे आने से पहले, हाथ जोड़ता हूँ तुम्हारे।

[राजीव अलमारी खोलकर एक बंडल निकालता है। पश्चात, चप्पल पहनकर बेटी की ओर देखता हुआ बाहर जाता है। शची कभी माता की ओर देखती है और कभी जमीन की ओर ताकने लगती है। कांति हतबुद्धि-सी उधर ही देखती रह जाती है जिधर पति गया है। उसकी समझ में ही नहीं आता कि इसे अपनी विजय समझे अथवा पराजय। कुछ देर बाद वह लड़की के पास आकर बैठ जाती है और उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगती है।]

शची

मोटी फिराक मुझसे नहीं पहनी जाती है माता जी ! तुम्हारे पास तो बड़े अच्छे अच्छे कपड़े हैं !

कांति

(*ठंढी साँस लेकर*) अब कहाँ हैं बेटी ! पहले के ही चल रहे हैं जो कुछ थे।

शची

पहले के कैसे माँ ?

कांति

(स्मृति में विभोर होकर) तेरह वर्ष पहले के जब··· जब विवाह हुआ था मेरा, तबके।

शची

(बड़ी रुचि से) विवाह में सबको खूब अच्छे अच्छे कपड़े मिलते हैं माँ ?

कांति

सबको नहीं, जिनके भाग्य·······*(पुत्री की ओर सस्नेह देखकर)* पर तुझे तो खूब ····ऐसे ही घर ब्याहूँगी तुझे जहाँ से खूब बढ़िया बढ़िया गहने कपड़े मिलें तुझे। *(बात रोक कर)* जरा पान तो ले आ बेटी !

[शची जाती है। मालती का शीघ्रता से प्रवेश।

मालती—

बाइस वर्ष की गोरी युवती। दुबली-पतली, पर स्वस्थ। हँसी उसके मुख पर इस तरह खेलती है जैसे विकसित कलियों पर सुकुमारता। इकन्नाई की साधारण साड़ी पहने है। माँग में सेंदुर और मुख पर लाल छोटी बिंदी खूब खिलती है। पैर में मामूली चप्पल है। हाथ में एक पत्रिका लिये है।

कांति मुस्कराकर उसका स्वागत करती है। दोनों डेस्क के पास की चटाई पर आकर बैठ जाती हैं।]

मालती

देवी जी तो कहीं जाने को तैयार बैठी हैं इस लू-धूप में !

कांति

हाँ, मैं तो तुम्हें बुलवानेवाली थी। चलोगी नहीं कीर्तन में ?

मालती

कीर्तन में ! किसके यहाँ ! *(जैसे कुछ याद आ गया हो)* अच्छा ! मैं समझी ! मुझे नहीं जाना है किसी के यहाँ !

कांति

क्यों ? उनके यहाँ तो चलो ...... बड़े भक्त आदमी हैं वे तो ! इतने बड़े होकर भी कितने मिलनसार हैं ! कितने हँसमुख।

मालती

(मुस्करा कर) हाँ ऽऽ, बड़े मिलनसार हैं, बड़े भक्त हैं, बड़े हँसमुख, बड़े आदमी ऽऽ और ..... और...... सब बातों में बढ़े-चढ़े हैं वे।

कांति

(साश्चर्य) तुम तो जैसे हँसी उड़ाती हो उनकी ?

मालती

(संयत स्वर में) हम छोटे आदमी किसी बड़े की हँसी कैसे उड़ा सकते हैं ? *(कांति उसकी ओर देखती रहती है)* हाँ, हमारी भी कुछ इज्जत है, मर्यादा है।

कांति

(*चौंक कर*) कैसी पहेलियाँ बुझा रही हो? बात क्या है?······वे······साफ कहो, क्या कहती हो?

मालती

बताऊँगी फिर कभी। संपादक जी हैं?

कांति

(*उपेक्षा से*) मुझे क्या मालूम? कहीं गये होंगे।

मालती

ऐसी लू धूप में इन्हें बाहर न जाने दिया करो इस तरह। सुना तुमने······दस-बारह आदमियों को लू लगी कल······। (*कांति चौंक पड़ती है*) किसी जरूरी काम से गए हैं वे?

कांति

क्या जाने क्यों गए हैं। (*बाहर की ओर देखकर*) लू तो बड़ी तेज है आज। मेरे काम से······। कोई क्या जाने किसी के मन की बात?

मालती

जानती हो तुम जरूर। आँखें कह रही हैं तुम्हारी। (*मुस्कराती है*) मुझे बताना नहीं चाहतीं तो जाने दो।

कांति

(*हँस कर*) रूठ गईं! मुझे ठीक नहीं मालूम कि काहे के लिए गए हैं। 'बस, अभी आया मैं जरा देर में' कह कर चले

गए वे। *(बाहर की ओर झाँककर)* बड़ी तड़क है धूप में *(विषय बदलती हुई, मालती के हाथ की पत्रिका को संकेत करके)* यह क्या है ?

मालती

इसमें उनका लेख है—'संपादक का जीवन'। *(दृष्टि गड़ाकर उसकी मुखाकृति का अध्ययन करने को प्रयत्नशील होकर)* तुमने तो पढ़ा होगा इसे ?

कांति

(उत्सुक होकर परंतु उदास स्वर में) उनका लेख ! मैंने तो नहीं पढ़ा। *(आगे बढ़कर पत्रिका हाथ में लेती हुई, धीमे स्वर से)* 'संपादक का जीवन।'

मालती

हाँ, बहन ! पढ़ो जरूर इसे तुम। *(कुछ रुक कर आत्मीयता जताते हुए)* बुरा न मानना...... मालूम होता है ...संपादक जी से तुम संतुष्ट नहीं हो। पर...... ।

कांति

(तटस्थ भाव से) संतुष्ट-असंतुष्ट होने का सवाल ही कहाँ उठता है जीवन में। भाग्य ने जो कुछ लिख दिया,"......"जिससे संबंध हो गया, वह तो निभाना ही पड़ता है यहाँ।

[मालती उसकी ओर ताकने लगती है ; तभी कांति के मुखमंडल पर उपहास का भाव खिल उठता है और वह हँस पड़ती है।]

मालती

यह लेख पढ़ डालो तुम, तब जैसा तुम कहोगी, मान लूँगी मैं। इस समय चलने दो। (*उठ खड़ी होती है ; चलते-चलते रुक कर*) और हाँ, थोड़ी देर में ही आऊँगी मैं। तब तक मत जाना तुम कीर्तन में। तुम्हें कसम है मेरी।

कांति

(*उसे रोक कर*) क्यों ? बात क्या है ? तुम जाओगी नहीं, मुझे भी नहीं जाने दोगी ?

मालती

बताऊँगी आकर बात सारी।

[*मालती चली जाती है। कांति पत्रिका लिए डेस्क के पास आकर बैठती है ; परंतु लेख पढ़ना शुरू न करके कवर का चित्र देखने में लीन हो जाती है।*

शची दो पान लाकर माता को देती है। स्वयं अपनी जगह पर न बैठकर सुराही से पानी पीती है। फिर कोने में जाकर अपनी चप्पल उठाकर कपड़े से पोछने लगती है। कांति का ध्यान बट जाता है। पत्रिका से हवा करते हुए वह उसकी ओर देखती।]

शची

कीर्तन में तो प्रसाद मिलेगा दोना भर`````सबके यहाँ बटता है, वे तो खूब अमीर हैं।

कांति

हाँ, बटेगा।

शची

बड़े अच्छे हैं सेठ जी। बाबू जी जब बाहर गये थे तब रोज आते थे यहाँ।

कांति

(*कुछ सोचती हुई*) हाँ, कभी कभी आते थे।

शची

फल-मिठाई भी लाते थे। मुझे पैसे देते थे। आज भी दे गये थे एक इकन्नी मुझे।

[*कांति सहसा चौंक पड़ती है। माथे पर पसीने की महीन फुहार-सी झलकने लगती है। उन्हें पोंछ कर वह पंखा हाँकती है।*

निरंजना का मुस्कराते हुए प्रवेश। कांति आगे बढ़कर उसका स्वागत करती है और आश्चर्य से उसकी ओर इस तरह देखती है जैसे इस समय उसके आने का कारण जानना चाहती हो।

निरंजना—

कीर्तन वाले सेठ की बहन। अवस्था लगभग पचीस वर्ष। गोरा रंग, चेहरा-मोहरा बहुत आकर्षक; वस्त्राभूषणों से अलंकृत होने पर पर सुंदरता और भी बढ़ जाती है। सफेद सिल्क की बढ़िया सारी जम्पर पहने है। बात-बात में हँसती है। कंठ भी रसीला है।]

निरंजना

तुम तो कहीं जाने को तैयार हो जैसे !

कांति

(भीतरी दरवाजे की ओर धूप की तड़क देखती हुई) तुम्हारे भैया के घर ही तो जाना है ! आज कीर्तन है न ! तुम नहीं गई ?

निरंजना

भैया के यहाँ क तेन !

कांति

हाँ, वे ही तो बुला गए थे सवेरे ! *(हँसती है)* और तुम्हें पता भी नहीं ?

निरंजना

भैया के तो नहीं है कीर्तन। सुना है पड़ोस में किसी और के यहाँ है। भाभी जायँगी वहाँ। उन्होंने कहलाया भी था चलने के लिए; प मैं नहीं गई।

कांति

पर… तुम्हारे भैया आये थे बुलाने और *(कुछ संकोच से)* मालती के यहाँ भी गये थे।

[निरंजना कुछ उत्तर नहीं देतीं; सोच में पड़ जाती है। कांति बार-बार उसका मुँह ताकती है। उसकी समझ में कुछ आता नहीं।]

निरंजना

(शची से) बेटी, पानी तो ला जरा। *(शची शीघ्रता से जाती है। कुछ देर मौन रहकर)* मालती जा रही है ?

कांति

नहीं, उससे कहा तो था मैंने; पर वह जाने को तैयार नहीं हुई।

निरंजना

कोई कारण नहीं बताया उसने ?

कांति

न, बस, ज ना अस्वीकार कर दिया। अभी आने को कह गई है वह। पूछना तुम।

निरंजना

(गंभीर होकर) हूँ SSS। ठीक ही कहा उसने। *(कुछ सोंच कर)* तुम्हें नहीं मना किया उसने ?

कांति

किया था। बोली—जब तक मैं न आ जाऊँ, जाना मत। *(आत्मीयता के स्वर में)* कसम भी धरा गई है अपनी।

निरंजना

ऐसा ही करना तुम। जाना मत।

कांति

पर,……पर … क्यों ? मालती भी विरोध कर रही है, तुम भी रोक रही हो ?

[निरंजना कोई उत्तर नहीं देती। कांति उसकी ओर जिज्ञासा से ताकती है। एक गिलास में जल और तस्तरी में पान लिए

शची का प्रवेश। निरंजना पानी पीकर पान खाती है। शची गिलास लेकर चली जाती है।]

निरंजना

बहन· स्त्री का चरित्र जान लेना जिस प्रकार पुरुष के लिए संभव नहीं है, वैसे ही   वैसे ही पुरुष की प्रकृति हमारे लिए भी अत्यंत रहस्यपूर्ण है। जो बहुत   जिन्हें हम   ।

कांति

(*उसकी ओर ताकती हुई*) क्या· मैं समझी नहीं मतलब तुम्हारा।

निरंजना

वही तो कहती हूँ कि जिन्हें हम बहुत सीधा सादा सज्जन समझते हैं, वे बड़े कुटिल हो· सकते हैं और जिन्हें···   ।

कांति

तो क्या तुम्हारे भैया ··

निरंजना

(*सावेश*) हाँ, बात बड़ी कटु है। हमारे भैया को लोग जितना सज्जन और धर्मात्मा कहते हैं, वे···   , मुझे कहते शर्म आती है, वे वैसे हैं नहीं !

कांति

(*साश्चर्य*) क्या कहती हो बहन तुम !

निरंजना

(*दृढ़ता से*) सच बात कहती हूँ। भाई हैं वे··· रक्त का संबंध है उनसे। परंतु दुनिया को सदा धोखे में रखा है उन्होंने।

कांति

धोखा! धोखा एक-दो को दिया जा सकता है; उन्हें तो सब ···सभी बड़ाई करते हैं उनकी।

निरंजना

इसी में तो कुशल है वे! पर यह अज्ञान है तुम्हारा जो सभी को उनका प्रशंसक समझती हो।

कांति

कैसे मानूँ बात तुम्हारी?

निरंजना

वैसे ही जैसे अपनी सगी बहन की मानती। (*कांति उसकी ओर इस तरह ताकती है जैसे अब भी उसका आशय न समझी हो।*) बहन, पैसे में बड़ा बल कहा जाता है और वह बल यही है कि लोगों के मुँह पर ताला लग जाता है। भैया के प्रशंसक मन की बात नहीं कहते।

कांति

दो-एक का ही मुँह बंद किया जा सकता है बहन!

निरंजना

बंद किया नहीं जाता, अपने आप हो जाता है। राष्ट्र का

विभिन्न वर्गों में विभाजन आज आर्थिक दृष्टि से है। जो धनी हैं, उनका स्वर एक है चाहे वे शिक्षित हों अथवा अपढ़ व्यवसायी। मध्यम वर्ग वालों में जितनों का इनसे किसी तरह का संबध है, वे सभी इनकी प्रशंसा करते हैं। शेष तटस्थ रहते हैं। और...... और निम्न वर्ग तो धनियों को अपना पोषक ही समझता है।

कांति

तुम्हारे भैया तो ...।

निरंजना

हाँ, भैया भी धनी हैं और इसलिए विलासी हैं—जैसे सभी धनियों का प्राण विलास-विहार में ही बसता है। नारी उनके लिए विलास का सर्वश्रेष्ठ साधन है।

कांति

(*किंचित भयभीत होकर*) क्या कहती हो बहन! तुम्हारे पति ... ।

निरंजना

(*ठठाकर हँसती हुई*) मेरे पति भी धनी वर्ग के ही हैं और ... और जान रखो कि भैया से उनकी पटती भी खूब है।

कांति

मैंने तो उन्हें दो-तीन बार देखा है; वे तो बेचारे बड़े सीधे... ...।

निरंजना

ऐसे सभी व्यक्ति इस कला में निपुण होते हैं। वे कितने म धे हैं, इसका पता मुझे है, तुम्हें नहीं। *(कांति पुनः साश्चर्य उसकी ओर ताकती है; कुछ उत्तर नहीं देती।)* संपादक जी से कभी बात की है तुमने इस विषय में ?

कांत

किसके ? धनियों के ?

निरंजना

हाँ. उन्होंने कभी धनियों की प्रशंसा की—भैया की या उनकी या किसी और धनी की ?

कांति

उन्हें तो धनियों से जैसे चिढ़ है धनी आदमी की हर बात उन्हें बुरी लगती है। नाच रंग सिनेम-नाटक सभा-समाज यहाँ तक कि दावत-ज्योनार में भी जाना उन्होंने इसलिए बंद कर दिया है कि वहाँ धनियों का ही जमघट रहता है।

निरंजना

मेरा भी यही अनुमान था। वे मध्यम श्रेणी के तटस्थ व्यक्ति हैं। ये धनी-वर्ग की विशेषताएँ समझ गए हैं! तुम अभी नहीं जानतीं।

कांति

मुझे तो कभी अवसर मिला नहीं; तुम्हीं लोगों के यहाँ दो-चार बार काम-काज में गयी-आयी हूँ, बस।

निरंजना

यही तो कहा मैंने। तुमने धनियों की ऊपरी तड़क-भड़क भर देखी है। तुम्हें हमारे जी का हाल क्या मालूम ?

कांति

तुम्हारे जी का हाल ? तुम्हें दुख है क्या कोई ?

निरंजना

(*हँसकर*) दुख !.... दुख भला फटक सकता है हमारे पास ? मेरे भैया लखपती, मेरे पति लखपती ! धन देवी-देवताओं को मोल ले सकता है, फिर संसार के सुखों को न ले सकेगा ?

कांति

तुम तो जैसे व्यंग्य कर रही हो।

निरंजना

व्यंग्य कैसा ! दुनिया यही समझती है कि सुख तो जैसे हमारे घर में टाँग तोड़कर बैठा है। तुम भी तो यही समझती हो ?

कांति

भाई, मेरी समझ में तो यह आता नहीं कि तुम्हें कोई दुख हो सकता है कभी।

निरंजना

यही तो कह रही हूँ मैं कि दुख तो हमारी छाँह भी नहीं छू सकता।

कांति

अब मैं तुम तो ...

निरंजना

यही न कि तुमने हमें बढ़िया से बढ़िया साड़ियों में लिपटे देखा है, जड़ाऊ गहनों से लदे देखा है, घर में नौकरों से घिरे और बाहर मोटरों पर चढ़े देखा है। बस, समझ लिया कि संसार का सारा सुख यही लूट रही हैं।

कांति

(*विशेष उत्सुकता से*) क्या हो गया है तुम्हें आज !

निरंजना

(*पूर्ववत्*) सच बताना, तुम इन्हीं बातों को देखकर तो कहती हो कि बड़े घर की लड़की है, बड़े घर की बहू है या और कुछ देख समझकर ?

कांति

और देखे भी क्या कोई ? किसी के घर का हाल क्या मालूम किसी को ?

निरंजना

यही तो कहती हूँ कि भीतर की बात जानतीं तो शायद तुम धनियों की स्त्रियों पर दया करतीं ; उनको संसार का सबसे निराश्रय प्राणी समझतीं।

कांति

(*हँसकर*) घर से लड़कर तो नहीं आई हो आज ?

निरंजना

लड़ती किससे ? दीवारों से ?

कांति

दीवारों से क्यों ? अपने उनसे।

निरंजना

यही तो तुम्हें मालूम नहीं है कि लड़ने का सौभाग्य भी धनियां की स्त्रियों को प्राप्त नहीं है। उस स्त्री को बड़ी भाग्यशालिनी समझो जो अधिकार के साथ कभी हँसकर कभी मान करके पति से कुछ कह सके।

[कांति सहसा चौंक पड़ती है। क्षण भर वह चकित-सी रह जाती है। उसका मुख-मंडल लाल हो जाता है। पश्चात् वह सगर्व निरंजना की ओर देखने लगती है।]

कांति

मैं समझी नहीं आशय तुम्हारा।

निरंजना

मेरा मतलब है कि धनी की नारी को तुम मूक और जड़ प्राणी समझो जिसे विलास की अन्य वस्तुओं के समान उन्होंने खरीदा है और जिसका पूर्ण उपभोग स्वामी की स्वेच्छा पर है। स्वयं स्त्री को इच्छा-अनिच्छा से किसी बात में बोलने का कोई अधिकार नहीं रहता।

[डाकिया आवाज देता है। शची भीतर से दौड़ती हुई आती है। डाक लेकर पिता जी की डेस्क पर रख देती है। कुछ कार्ड-लिफाफे हैं और दो-तीन पत्र-पत्रिकाएँ। शची एक बालोपयोगी पत्रिका पहचानकर खोलती है और मनचाही चीज पाकर प्रसन्न हो जाती है। पत्रिका लिए वह भीतर चली जाती है।

निरंजना शेष पत्रिकाएँ लेकर देखती है। एक जगह उसे राजीव का चित्र दिखायी देता है। वह उसे ध्यान से देखने लगती है।

कांति चिट्ठियों के पते देख-देखकर अलग रखती जाती है; किसी को पढ़ने का प्रयत्न नहीं करती।]

निरंजना

इसमें तो लेखक जी का चित्र है! देखा तुमने?

कांति

(चिट्ठियों को एक तरफ रखती हुई, विशेष उत्साह न दिखाकर) होगा, छपता ही रहता है।

निरंजना

(पत्रिका पर दृष्टि गड़ाए हुए) और भी पत्रों में छपता है?

कांति

(पहले के स्वर में) हाँ, प्रतिमास कइयों में छपा करता है।

निरंजना

बड़ा गर्व होता होगा इन चित्रों को देखकर तुम्हें? *(कांति कुछ उत्तर नहीं देती, फिर पत्र देखने लगती है)* लेखक जी का

बड़ी दूर दूर तक नाम है। (*कांति फिर भी मौन रहती है।*) बड़ी भाग्यशालिनी हो तुम। (*कांति चिट्ठियाँ हाथ में लिए हुए उसकी ओर इस तरह देखती है जैसे उसके कथन में निहित भावना जानना चाहती हो*) इसमें लेखक जी का लेख भी है 'पारिवारिक अशांति'; तुमने तो यह पहले ही पढ़ा होगा ?

कांति

मैंने ? (*मुख कुछ मलिन हो जाता है*) मैंने तो नहीं पढ़ा।

निरंजना

ऐं ! ऐसे लेख तो तुमसे सलाह करके लिखे जाते होंगे ?

कांति

मुझसे ? मैं भला क्या सलाह दूँगी किसी को ?

निरंजना

(*चित्र को खोलकर उसके सामने रखती हुई*) मेरी ओर देखते समय यह चित्र गंभीर हो जाता है, पर तुम्हारी ओर कितनी मुस्कराहट से देखता है यह ! (*कांति उड़ती हुई दृष्टि चित्र पर डालती है*) एक बात पूछूँ तुमसे, बताओगी ?

कांति

छिपाया है मैंने तुमसे कभी कुछ ?

निरंजना

लेखक जी को पति-रूप में पाकर सुखी हो तुम ?

कांति

(*मुस्कराकर*) कहीं तुम्हें ईर्ष्या तो नहीं होती है मेरे भाग्य से ?

निरंजना

(*किंचित संकोच से*) देखो, हँसी में मत उड़ाओ बात मेरी। मैं पूछती हूँ वह बताओ पहले।

कांति

अरे, यह भी कोई पूछने की बात है? उनका सा पति पाकर कोई भी स्त्री अपना भाग्य सराहेगी।

निरंजना

मैं सबकी नहीं, सिर्फ तुम्हारी बात जानना चाहती हूँ—तुम सुखी हो या नहीं?

कांति

अपनी ही बात कह रही हूँ। सुखी न होती तो इस तरह मोटी ताजी रहती; हँसती-खिलती तुम्हारे सामने?

निरंजना

ईश्वर तुम्हें सदा स्वस्थ और सुखी रक्खे; परंतु तुम्हारा स्पष्ट उत्तर न देना ही यह सूचित करता है कि तुम··· तुम उनसे संतुष्ट नहीं हो।

कांति

(*किंचित् उदास होकर*) तो इन लेखों में वे अपने घर की ही बातें लिखा करते हैं?

निरंजना

किन लेखों में? यह लेख तो अब देखा है मैंने; पढ़ कहाँ पायी हूँ अभी?

कांति

फिर तुम्हारे अनुमान का आधार क्या है?

निरंजना

(*लेख की ओर इंगित करके*) इसके शीर्षक से अनुमान होता है कि कभी-कभी पारिवारिक समस्या उन्हें चिंतित कर देती होगी ; अन्यथा लेखक तो कल्पना की मनोरम व टिका में ही विचरण करना चाहता है।

कांति

परंतु हम पार्थिव जगत के जावों की पहुँच वहाँ तक कैसे हो सकती है ?

निरंजना

बड़ी सरलता से। लेखक तो अपने संपर्क में आने वाले सभी व्यक्तियों को उस रम्य लोक की सैर करना चाहता है, फिर तुम तो उनकी सहचरी हो। तुम तो.........

कांति

(*सरुचि*) क्या ?

निरंजना

नारी तो लेखक की स्फूर्तिदायिनी होती है और जब.........

कांति

होगी, मुझे तो ··· मैं तो प्रत्यक्ष की बात जानती हूँ। कल्पना की अमृतधारा किसी प्यासे को तृप्त नहीं कर सकती।

निरंजना

ठीक। परंतु प्यास एक आवश्यक होती है और दूसरी अनियमित। पहली जल चाहती है; दूसरी हाला की ओर इंगित करती है। तुम जल चाहती हो या हाला ?

कांति

भूख प्यास और अन्न-जल—बनचरों-सा जीवन का क्रम—किसी को प्रिय नहीं हो सकता। मानव की चेतना उससे यही चाहती है कि वह इनसे ऊपर उठे। सुख की कामना त्याज्य समझती हो तुम ?

(सहसा मालती का प्रवेश)

मालती

सुख कामना तो प्राणी जन्म से पालता है।

कांति

यही तो कहती हूँ; संसार में लिप्त और विरक्त—सभी इसी की खोज में व्यस्त रहते हैं; नित्य नये साधन जुटाते हैं। इस लोक में ही नहीं, परलोक में भी सुख चाहने की चाह में, ये अपने को घुला डालते हैं। क्या सुख को त्याज्य समझते हैं ये ?

निरंजना

सुख त्यागने को मैं कब कहती हूँ! परंतु सुख के रूप और आदर्श में अंतर तो रहता है न ? अमृतपान और मद्पान का आनंद तो समान नहीं कहा जा सकता ?

मालती

तुम्हारा भी समर्थन करती हूँ मैं बहन ! इस लू-धूप में कीर्तन का आनंद लूटने से मुझे तो किसी ठंडी जगह में एक नींद ले लेना कहीं ज्यादा सुखदायी मालूम पड़ता है।

[निरंजना और कांति दोनों हँस पड़ती हैं। कांति की हँसी का स्वर निरंजना से हल्का रहता है।]

निरंजना

परंतु अपने सुख की चाह दूसरे पर लादना बुरा है। इनको क्यों रोक लिया भैया के यहाँ जाकर कीर्तन का सुख लूटने से ?

मालती

मैंने रोका कहाँ ? मैं तो इतना कह गयी थी कि जब तक मैं न आ जाऊँ तब तक न जाना वहाँ। अब जा सकती हैं ये। तुम जा रही हो वहीं ?

निरंजन

कहाँ ? भैया के कीर्तन है भी ?

(*रहस्यपूर्ण ढंग से हँसकर*) इसी से तो रोक गयी थी इन्हें। महरी को भेजकर पुछवाया था उनसे कि कितनी देर है कीर्तन में। सो उसने तो.........

कांति

क्या कहा उसने ?

मालती

(निरंजना की ओर देख कर) क्या बताऊँ, कुछ समझ में नहीं आता कि कहाँ तक उसकी बात ठीक है।

निरंजना

(फीकी हँसी हँसती हुई लज्जित सी) संकोच मत करो कि सेठ जी भाई हैं मेरे। मुझे मालूम हैं उनकी करतूतें।

कांति

(किंचित भयभीत-सी, परंतु उत्सुकतावश) क्या हुआ ? क्या कहा उन्होंने ?

निरंजना

रोक लिया होगा उसको और क्या करते ?

कांति

एं ? क्यों ?

निरंजना

क्या कहूँ ?......महरी ·· सेठ जी ···

[कांति साँस रोककर उसकी बातें सुनना चाहती है; निरंजना कभी कांति की ओर देखती है, कभी निगाह नीची कर लेती है। मालती की ओर देखने का उसे साहस नहीं होता। उसका चेहरा फीका पड़ जाता है।]

निरंजना

मेरा संकोच कर रही हो तुम ?

मालती

नहीं--सेठ जी ने कहलाया उससे कि जल्दी ही कीर्तन शुरू होगा। लोग आने वाले हैं।

निरंजना

तुम छिपा रही हो कुछ, बहन, तुम्हारी आँखें कह रही हैं।

[मालती कुछ लज्जित हो जाती है। कांति कभी उसकी ओर देखती है, कभी निरंजना की ओर।]

मालती

छिपाऊँगी तुमसे ? ......कहूँ भी कैसे ? इससे ही सब समझ लो कि सेठ जी ने उसे रुपया दिया, कहा—जल्दी। लिवा कर लाना मालकिन को।

[मालती जल्दी से कह जाती है। उसका स्वर धीरे धीरे धीमा होजाता है। कांति के माथे पर पसीना आ जाता है; वह स्वयं लज्जित सी हो जाती है। निरंजना का सर भी झुक जाता है।

इसी समय दो आदमियों का सहारा लिए बेहोश से आँख मूँदे राजीव का प्रवेश। तीनों स्त्रियाँ हड़बड़ाकर खड़ी होती हैं।]

निरंजना और मालती

(*सम्मिलित स्वर में*) क्या हुआ इन्हें ?

एक सहायक

गर्मी से जरा चक्कर आ गया है। घबड़ाएँ नहीं आप। दस-पंद्रह मिनट में ठीक हो जायँगे। लिटा दीजिए आराम से इन्हें।

[मालती लपककर पलँग बिछा देती है। राजीव को सहारा देकर उसपर लिटा दिया जाता है। निरंजना पंखा लेकर हाँकने लगती है। कांति पलँग के समीप हतबुद्धि-सी खड़ी रह जाती है।

भीतर से शची दौड़ती हुई आती है। पिता को पलँग पर पड़ा देखकर घबड़ा जाती है।]

शची

अरे ! क्या हुआ पिता जी को ?

दूसरा सहायक

ले बेटी, यह दवा इन्हें पिला दे। और आराम से लेटा रहने दो कुछ देर, अभी ठीक हो जायँगे। *(स्त्रियों की ओर देखकर)* जरा सी गरमी चढ़ गया है दिमाग पर इनके।

पहला सहायक

(एक बंडल शची को देकर) ले बेटी, यह बंडल इनका है। आराम से लेटे रहें ये ; अभी ठीक हो जायँगे।

मालती

बड़ा कष्ट हुआ आप लोगों को। इस कृपा के लिए हम सदैव कृतज्ञ रहेंगे आपके।

पहला सहायक

(हाथ जोड़कर) इसमें कष्ट की क्या बात है ! यह तो धर्म था हम लोगों का। आप घबड़ाएँ नहीं ; अभी उठकर आपसे बातें करेंगे ये।

दूसरा सहायक

(*हाथ जोड़कर*) अच्छा, अब आज्ञा दूँ।

[*दोनों 'नमस्ते' करके जाते हैं। मालती आँगन की ओर का दरवाजा बंद कर देती है। निरंजना अब भी हवा कर रही है। कांति मूर्तिवत् खड़ी है; समझ नहीं पाती कि क्या करे। शची पलँग के पैताने खड़ी है। बंडल उसके हाथ में है।*]

निरंजना

(*धीरे से*) गरमी और लू है भी ता गजब की। मेरा तो यहाँ तक आते-आते जैसे दम निकल गया था।

मालती

और फिर ये तो कहीं आते-जाते नहीं लू धूप में। जो निकलता हो, उसकी आदत बनी रहे।

निरंजना

आज न जाने क्यों बाहर गये। (*कांति से*) इन्हें बाहर मत जाने दिया करो दोपहर को।

[*कांति कुछ उत्तर नहीं देती; दृष्टि बचाकर शची की ओर देखती है और संकेत से चुप रहने को कहती है।*]

कांति

जरा सा पानी दिया जाय?

मालती

अभी रुक जाओ। पहले दवा दे दो।

कांति

शची, प्याली तो ले आ।

[शची जल्दी से अलमारी खोलकर प्याली लाती है और हाथ का बंडल वहीं रख आती है। कांति सुराही से गिलास में जल लेकर निरंजना और मालती की सहायता से दवा पिलाती है।]

निरंजना

(मुस्कराकर कांति से) बस, अभी ठीक होते हैं ये। तुम्हारे हाथ की दवा अमृत का काम करेगी।

[मालती भी मुस्करा देती है। कांति हँसकर कुछ लजा जाती है। शची प्याली धोकर अलमारी में रख देती है। कांति निरंजना के पास जाकर पंखा लेना चाहती है। निरंजना नहीं देती !]

निरंजना

इतनी सुकुमार नहीं हूँ कि मेरे हाथ थक जायँगे।

[कांति और मालती मुस्कराने लगतीं हैं। इसी समय राजीव आँखें खोलकर सबकी ओर देखता है। निरंजना पर दृष्टि पढ़ते ही हाथ जोड़कर नमस्ते करता है। निरंजना मुस्कराकर उत्तर देती है।]

राजीव

आपने कैसे कष्ट किया इस समय ?

निरंजना

मैं आयी थी यह देखने कि लू-धूप में भी आप घर पर बैठते हैं या नहीं ?

राजीव

एक जरूरी काम से चला गया था।

[राजीव एक बार पुनः सबकी ओर देखता है। कांति से भी इस बार चार आँखें होती हैं। कांति दृष्टि नीची कर लेती है।]

मालती

अब कैसा जी है आपका ?

राजीव

(*बैठकर*) ठीक है, जरा चक्कर आ गया था। आप लोगों को बड़ा कष्ट हुआ मेरे कारण। बैठिए अब।

[राजीव स्वयं पंखा ले लेता है। तीनों स्त्रियाँ चटाई पर बैठती हैं। निरंजना और मालती का मुख राजीव की ओर है ; कांति दूसरी ओर देखती है।]

राजीव

(*स्वस्थ स्वर में निरंजना से*) आपका लेख पढ़ा था मैंने।

निरंजना

पर छापा नहीं ?

राजीव

(*हँसकर*) हाँ, अभी तो नहीं छपा है।

निरंजना

आप वह मुझे दे दीजिए। मैं उसे जरा बढ़ाऊँगी।

राजीव

पुरुषों को फटकार वाला हिस्सा निकाल देंगी या.... ..

निरंजना

(*मालती की ओर देखकर साभिमान*) और कड़ी फटकार दूँगी।

राजीव

ऐसा करने से लाभ क्या होगा ?

निरंजना

लाभ हो या न हो, जिसके जैसे कर्म होंगे, कहा ही जायगा।

राजीव

तुम्हारा लेख मालती के नाम से छाप दूँ ?

निरंजना

नहीं। क्यों ?

राजीव

अपने नाम से छाप दूँ तो ?

निरंजना

(*कुछ सोचती हुई*) अच्छा, छाप दीजिए। मैं ‥मैं तो उसे छपा देखना चाहती हूँ।

राजीव

अर्थात् आज के पुरुष को फटकारा जाय, कोई भी फटकारे। (*हँसता है*) अच्छी बात है। सुधार देना उसे। किसी न किसी

के नाम से छाप दूँगा। (*पुनः हँसकर*) उसे छापना इसलिए भी आवश्यक है कि कहीं तुम मुझे पुरुषवर्ग का हिमायती न समझ बैठो। परंतु तुम्हारे नाम से नहीं छाप रहूँगा; इसके लिए क्षमा करना। तुम स्वयं समझदार हो।

मालती

आपका 'संपादक का जीवन' शीर्षक लेख छप कर आया है आज!

राजीव

(*कांति की ओर देखकर*) यों ही लिख दिया था।

निरंजना

और 'पारिवारिक शांति' वाला?

राजीव

उसमें भी मेरे विचार हैं; दूसरों के विचार भिन्न हो सकते हैं।

निरंजना

मैं आशय नहीं समझी आपका।

राजीव

ऐसे विषयों पर हमारे अनुभव एकांगी होते हैं, यही एक दोष है। सबकी समस्याएँ बड़ी जटिल होती हैं। इसलिए इन विषयों पर लिखते समय उदार रहकर ही हम सफलता पा सकते हैं।

[घड़ी में चार बजते हैं। निरंजना और मालती उठ खड़ी होती हैं।]

निरंजना

अब आज्ञा दीजिए; फिर दर्शन करूँगी।

राजीव

(हाथ जोड़कर) धूप में कष्ट न कीजिएगा।

मालती

(दो पत्रिकाएँ उठाकर) इन्हें लिये जाती हूँ। सबेरे दे जाऊँगी। आप तो नहीं पढ़ेंगे?

राजीव

बाद को देख लूँगा। ले जाइए आप।

[दोनों जाती हैं। कांति उन्हें पहुँचाने के लिए बाहर तक जाती है। राजीव शची से लेकर पानी पीता है; फिर लेट जाता है! कांति लौटकर पलँग के पास आती है। राजीव की आँखें बंद हैं। कांति झुककर सर पर हाथ रखती है।]

कांति

कैसा जी है?

राजीव

बिलकुल ठीक है। अब चलो जाओ कीर्तन में शची को लेकर। *(चारो ओर देखकर)* बंडल कहाँ गया? लाये नहीं वे लोग?

[शची दौड़कर बंडल निकाल लाती है। राजीव खोलकर दो रेशमी फिराकें और एक साड़ी निकालता है। फिराकें पुत्री को देता है। शची एक बार माता की ओर देखकर सचाव ले लेती है। साड़ी पत्नी की ओर बढ़ाता है। कांति हाथ भी नहीं हिलाती।]

राजीव

मैंने सोचा, वर्षों से तुम्हारे लिए कुछ नहीं लाया। आज एक साड़ी ही लेता चलूँ।

[कांति फिर भी हाथ नहीं बढ़ाती ; हाँ, शची की ओर सस्नेह देखती है।]

राजीव

जाओ अब, देर क्यों कर रही हो ?

कांति

मैं वहाँ नहीं जाऊँगी अब।

राजीव

क्यों ? अभी देर थोड़े ही हो गयी है।

कांति

फिर देखा जायगा किसी दिन।

राजीव

अच्छा तो एक बार यह साड़ी पहन लो।

[कांति 'अभी आयी' कहकर जल्दी से भीतर चली जाती है। राजीव उसकी ओर सप्रेम देखने लगता है। शची अपनी एक फिराक लिए लंबाई नापती है।]

राजीव

(सस्नेह) पहनकर देख ठीक है तेरे ।

शची

(सचाव देखती हुई) जब कहीं जाऊँगी, तब पहनूँगी ।

राजीव

पहनकर देख तो एक बार ।

[शची डरते-डरते भीतर की तरफ देखती है ; फिर फिराक पहनकर प्रसन्न हो जाती है ।]

राजीव

जा, माता जी को दिखा आ और दूसरी संदूक में रख आ ।

[शची फिराक लिए भीतर चली जाती है । राजीव उठकर डेस्क पर से चिट्ठियाँ उठा लाता है और पलँग पर लेटकर पढ़ने लगता है । कांति का एक संतरा लिए प्रवेश । इस बार वह खद्दर की मोटी साड़ी पहने है । राजीव उसकी ओर अचरज से देखता है ।]

कांति

लो, यह खा लो ।

राजीव

पहले यह साड़ी पहन लो ।

कांति

इतने रुपए कहाँ से मिल गये ?

राजीव

कहीं से आ गये।

कांति

तुम्हें कसम है, सच बताओ।

राजीव

कुछ किताबें बेच दीं और बाकी रुपए उधार कर दिये।

कांति

(*चौंककर*) ऐं ! उधार लिये तुमने ?

राजीव

(*हँसता हुआ*) ऊँह, दो-तीन लेख लिख दूँगा। अदा हो जायँगे सब दाम। कौन बड़ी बात है। (*साड़ी उठाकर*) पहन लो इसे एक बार। देखूँ, कैसी लगती है ! बहुत दिन से रेशम साड़ी पहने नहीं देखा है तुमको।

कांति

नहीं, इसे फेर देना आज ही।

राजीव

यह कैसा होगा ?

कांति

यही करना, मेरी बात मानो। (*सरलता से*) मैं अब खद्दर की साड़ी ही पहनूँगी।

राजीव

क्यां ? बात क्या है ?

कांति

रेशमी साड़ी का मूल्य मैं समझ गयी हूँ। मुझे अब खद्दर की साड़ी ही ला देना। (*हाथ जोड़कर सजल नेत्र होकर*) मेरी आज की भूल के लिए क्षमा करो।

[राजीव सप्रेम उसके जुड़े हुए हाथ अपने हाथों में ले लेता है।]

दंड

पात्र

महात्मा ईसा—ईसाई धर्म के प्रवर्तक

एक भारतीय सहपाठी

चार शिष्य

एक सेनानायक और सैनिक

पात्री

माता मरियम—ईसा की माता

[यूरोसलम के मकान का एक बड़ा कमरा। महात्मा ईसा शिष्यों के साथ बैठे हैं। रात्रि का समय है; भोजन समाप्त हो चुका है। कृष्ण पक्ष की अँधियारी चारों ओर छाई है।]

पहला शिष्य

साम्राज्य की प्रजा में आज बहुत जागृति दिखायी दे रही है।

दूसरा शिष्य

जागृति आज! जागृति तो उसी दिन हो गयी थी जब अत्याचारी और क्रूर राजा ने धर्मपिता की हत्या करायी थी!

ईसा

(दूसरे शिष्य से) संयम से काम लो। किसी के लिए भी ऐसे विशेषणों का प्रयोग मत करो जिनसे घृणा या क्षोभ प्रकट हो।

दूसरा

जिस सम्राट ने धर्मपिता की हत्या करायी उसके प्रति प्रेम! उसके प्रति दया!

ईसा

हाँ, संयम इसी का नाम है। गाल पर थप्पड़ मारने वाले के हाथ सहला दो कि उसके चोट लग गयी होगी। सहनशीलता का विकास आत्मा के ऐसे ही संयम का आधार चाहता है।

प्रथम

भगवन! इन्ही विचारों के अनुसार आचरण करना क्या साधारण जनता के लिए संभव होगा?

ईसा

जनता के लिए नहीं, तुम्हारे लिए संभव होना चाहिए। इन विचारों पर आचरण करने से समाज में शांति होगी। सबको सुख मिलेगा। तुम जनत के सेवक हो। उसके सुख-दुख का ध्यान रखना तुम्हारा कर्तव्य है।

[ईसा के एक भारतीय सहपाठी का प्रवेश। ईसा उट कर बड़ प्रेम से हाथ पकड़ कर उसे अपने पास बैठाते हैं। दोनों शिष्य भी भारतीय का सादर अभिवादन करते हैं।]

ईसा

आओ भाई, तुमसे बातें करते जी नहीं भरता।

भारतीय

(मुस्कराकर) यह मेरा सौभाग्य है। यहाँ आकर मुझे यह देख बड़ा संतोष हो रहा है कि अपने देश का उद्धार करने में बहुत-कुछ सफलता तुमने प्राप्त कर ली है।

ईसा

ऐसा मत कहो भाई! प्रकृति परिवर्तनशील है। एक सी स्थिति में रहना उसकी प्रवृत्ति के प्रतिकूल है! ऐसे परिवर्तन का श्रेय किसी व्यक्ति का ...!

भारतीय

निष्काम सेवा की प्रति मूर्ति! कभी हम लोगों की याद भी तुम्हें आती है?

ईसा

तुम्हारी याद ! तुम लोगों का स्नेहपूर्ण व्यवहार, तुम्हारा आतिथ्य प्रेम, तुम्हारी उदारता, क्या भुलाने से भी कोई भूल सकता है ?

भारतीय

भारत में तुम्हारी याद सभी किया करते हैं। तुम्हारी सरलता और स्नेहशीलता सभी के हृदय पर अंकित है।

ईसा

गुरू जी कभी मेरी चर्चा करते हैं ?

भारतीय

चर्चा ! वे तो तुम्हारी प्रशंसा करते थकते ही नहीं। आश्रय में लगाये हुए तुम्हारे आम के पेड़ खूब फलते हैं गुरूजी कहते हैं कि इनकी मिठास ईसा की वाणी और व्यवहार के माधुर्य का फल है।

ईसा

(नतमस्तक और गदगद) मेरा जन्म सार्थक हुआ जो गुरुजी की मुझपर इतनी कृपा है। उनके चरण छूकर मेरा सविनय प्रणाम कहना।

तीसरा शिष्य

(प्रवेश करके) एक रोगी द्वार पर है। मैंने कहा-सबेरे आना ; पर वह जाने का नाम नहीं लेता।

ईसा

(तत्काल उठकर) तुमने पहले सूचना क्यों नहीं दी ? उसका रोग तो सबेरे तक मेरा रास्ता नहीं देखेगा। (भारतीय सहपाठी से) भाई, अभी आया मैं। (तीसरे शिष्य के साथ प्रस्थान)

भारतीय

(ईसा के दोनों शिष्यों से) तुम्हारे देश की दशा तो बड़ी शोचनीय है!

पहला शिष्य

क्या किया जाय! राजा का अत्याचार प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। दरबार में राज्य भर के चापलूस जमा हैं। प्रजा लूटी जा रही है और धन उसका विलास में लुटाया जा रहा है। दिन-दहाड़े लूट-मार होती है। प्रजा को जान-माल का कोई रक्षक नहीं है।

भारतीय

यही तो सबसे बुरा है। प्रजा की रक्षा करना तो राजा का सबसे पहला कर्तव्य है।

दूसरा शिष्य

प्रजा की रक्षा करना तो छोड़िए; हमारे धर्म स्थान भी पाप के अड्डे हो रहे हैं। धर्म-कर्म करने वाले पुजारियों को हटाकर पेटू, शराबी, जुआरी और पापी व्यक्ति उनके स्थान पर महंत बना दिये गये हैं। देवस्थानों में वे ही जाने पाते हैं जो अच्छी

भेंट दे सकते हैं, निर्धनों को तो ठोकर मार कर निकाल दिया जाता है। घूस के बिना जैसे ईश्वर भी प्रसन्न नहीं होता।

भारतीय

तब तो राजा अधर्मी भी है! ऐसा राज्य अधिक समय तक नहीं चल सकता।

पहला शिष्य

राजा के अत्याचार के विरुद्ध जो भी आवाज उठाता है वही तलवार के घाट उतार दिया जाता है। हमारे धर्म-पिता ने जब इस अत्याचार का विरोध किया तो उन्हे भी मरवा दिया गया।

भारतीय

(गभीर और विचार मग्न होकर) अत्याचार जब सीमा के बाहर हो जाता है तभी क्रांति होती है। क्रांति के लिए स्थिति राजा के अत्याचार ने प्रस्तुत कर दी है। केवल पूर्णाहुति की आवश्यकता है।

ईसा

(प्रवेश करके) इसका भी प्रबंध हो गया है भाई!

(भारतीय सहपाठी उसकी ओर देखने लगता है; दोनों शिष्य भी चौंक पडते है। तीनों विशेष उत्सुकता से उनकी ओर ताकते हैं। ईसा शांत भाव से बैठ जाते हैं।)

दोनों शिष्य

क्या कहा आप ने अभी?

ईसा

मुझे भी पकड़ाने········अपने देश के उद्धार के लिए मुझे अपनी बलि देनी होगी।

दूसरा शिष्य

आपको पकड़ाने········देश के उद्धारक को ? कौन कृतघ्न और नीच होगा इतना ?

ईसा

वत्स, वाणी को वश में करो। जो होना होगा हो ही जायगा। भविष्य की चिंता करके अपने वर्तमान को नष्ट न करो। हाँ तो, (भारतीय से पूर्ववत् प्रसन्नचित्त होकर) तुम्हें देखते ही भारतीय प्रवास की सारी घटनाएँ जैसे मेरे सामने घूमने लगती हैं।

भारतीय

इतनी जटिलताओं में रहकर भी तुम उन दिनों की बातें भूले नहीं ?

ईसा

भूलूँगा कैसे ! मैं तो समझता हूँ कि सभ्यता क्या है, सहृदयता क्या है, मानवता क्या है, यह सब सीखने के लिए हमें भारत जाना होगा। मैंने वहाँ रहकर जो कुछ सीखा था उसकी परीक्षा देना अभी शेष है। तब क्या उस देश को हम कभी भूल सकते हैं ?

भारतोय

(ससंकोच) तुमने तो भारत की प्रशंसा के पुल बाँध दिये हैं।

ईसा

प्रशसा नहीं, ये हृदय के उद्‌गार हैं! अपने देश में प्रेम, विश्वास और धर्म के नाम पर घोर पाखंड का प्रचार जब मैं देखता हूँ तभी स्वभावतः मुझे उस देवभूमि की याद आ जाती है जहाँ मेरे जीवन का स्वर्णकाल बीता था; जहाँ मैंने शिक्षा प्राप्त की थी।

पहला शिष्य

(भारतीय पर जिज्ञासु की दृष्टि डालकर ईसा से) उस देवभूमि की और क्या विशेषताएँ हैं!

ईसा

विशेषताएँ! विशेषताओं की चर्चा करने का समय ही अब कहाँ है! कुछ देर बाद.........? बस, इतने में ही भारत का महत्व समझ लो कि वहाँ के लोग स्व-पर के आधार से ऊपर उठकर परदेशी को भी भाई मानते हैं।

पहला

यहाँ भाई-भाई को शत्रु और अविश्वासी समझता है।

दूसरा

यह पारस्परिक शत्रुता और अविश्वास हमारे राजा के अत्याचार का ही तो फल है।

भारतीय

भाइयों, तुम्हारे राजा के अत्याचार की कहानी थोड़ी-बहुत मैं भी सुनता आया हूँ। मेरी समझ से तो तुम लोगों को उसका कृतज्ञ होना चाहिए, उसे धन्यवाद देना चाहिए!

पहला

एं, क्या कहते हैं आप!

भारतीय

अत्याचार बढ़ने पर ही धर्म का स्थापन करने वाली शक्तियाँ अवतीर्ण होती हैं और तब हम विश्वास करते हैं कि हमारा रक्षक भी कोई है।

ईसा

हमारे धर्म-पिता भी निस्संदेह ऐसे ही एक थे।

भारतीय

ठीक है। (दृढ़ विश्वास के साथ) ये शक्तियाँ मनुष्य को पशु होने से बचाती हैं। प्रेम, करुणा और सहिष्णुता की दीक्षा देकर उसे सबल बनाती है और तब....तब (किंचित मुस्कराकर) दर्शन करने के लिए हमारे जैसे ..... लोग हजारों मील चलकर उनके पास आते हैं।

ईसा

(सस्नेह हाथ पकड़कर) भाई, अब तो तुम बड़े वाक्‌पटु हो गए हो!

भारतीय

वह वाक्पटुता नहीं है। अपने देशवासियों की सेवा जिस प्रकार कष्ट सहकर तुम कर रहे हो, सर्वत्र उसकी प्रशंसा मैंने सुनी है। तुम्हारे शत्रुओं की संख्या कम नहीं दिखायी देती और संभव है कि तुम्हें उनके हाथों कष्ट भी उठाना पड़े।

ईसा

(सोत्साह) मुझे कष्टों से भय नहीं है। हमारे देश की प्रजा किसी प्रकार सुखी हो जाय, मेरे जीवन का परम उद्देश्य यही है। इसके लिए मुझे यदि काँटों का ताज पहिनना पड़े तो मैं हँसते-हँसते उसे स्वीकार कर लूँगा। भाई, आशीर्वाद दो कि मैं अपने निश्चय पर दृढ़ रह सकूँ।

तीसरा शिष्य

(प्रवेश करके भारतीय से) आप के विश्राम का प्रबंध हो गया है।

ईसा

जाओ भाई विश्राम करो। हाँ, सुनो, एक प्रार्थना है। जब भारत लौटना तो गुरू जी के चरण छूकर इतना निवेदन कर देना कि मैं शक्ति भर आप के आदेशों को कार्यरूप दे रहा हूँ।

भारतीय

कल मैं स्वदेश को प्रस्थान करूँगा; अभी से संदेश दिये देते हो; क्या भेंट नहीं करोगे कल !

ईसा

भाई, न जाने क्यों यह इच्छा हो रही है कि अभी ही तुम्हें गले भी लगालूँ !

भारतीय

(हाथ फैला कर) अच्छी बात है, (गले लगा कर) बड़े भावुक हो !

ईसा

चलो, तुम्हें थोड़ी दूर पहुँचा दूँ, बिदा करने की रस्म भी मैं अभी ही पूरी कर लेना चाहता हूँ। (दोनों शिष्य से) तुम लोग यहीं रहना। अभी आया मैं।

(भारतीय सहपाठी के साथ ईसा का प्रस्थान। दोनों शिष्यो कुछ देर उसी ओर देखते रहते है।)

पहला

गुरुदेव की आकृति में आज तुम कुछ परिवर्तन लक्ष्य कर रहे हो ?

दूसरा

यही मैं भी सोच रहा था। उनके मुख पर आज सरलता नहीं खेल रही है; जैसे किसी गंभीर स्थिति पर वे विचार कर रहे हैं।

पहला

तुम्हारा अनुमान ठीक है। आज उनमें भावों का आवेश

भी अधिक है। कुछ कारण समझ में आता है इसका ?

दूसरा

कारण !.... मैं तो .. मुझे आज कुछ अनहोनी घटना घटित होती दिखायी देती है।

पहला

ईश्वर दया करे ! धर्मपिता के अंतिम दर्शन जब मैंने किये थे तब उनके मुख परभी ऐसी ही रह यमयता थी। वे बराबर मेरी तरफ इस तरह देखते हैं कि जैसे कुछ कहना चाहते हों, परन्तु न जाने क्यों रुक जाते हैं।

दूसरा

ठीक कह रहे हो ; इतनी देर की बातचीत में ही कई बातें तो अधूरी कहीं उन्होंने और कई का उत्तर नहीं . ...

(किसी के आने की आहट होती है। दोनों द्वार की ओर देखने लगते है। कोई आता नहीं।

पहला

इस मकान में आज न जाने कैसा भय सा लगता है।

दूसरा

मेरा कलेजा भी धड़क रहा है; जी रोऊँ - रोऊँ सा हो रहा है।

पहला

ईश्वर का ही अब सहारा है। वही दया... ..

ईसा

(प्रवेश करके) ठीक, ईश्वर बड़ा दयालु है! उसकी दया पर विश्वास रखने में ही हमारा कल्याण हो सकता है। (बैठकर) आओ बैठो। (दोनों बैठते हैं) मैंने अभी तक तुम्हें जाने नहीं दिया। इसका विशेष कारण है।

दोनों

आज्ञा दीजिए गुरुदेव !

ईसा

मैं आज एक बात पूछना चाहता हूँ (दोनों विशेष उत्सुक होते है) बात तुम्हें विचित्र लगेगी, परन्तु न जाने क्यों पूछने की इच्छा हो आयी है।

दोनों

(एक दूसरे की ओर देखकर) क्या आज्ञा है हमारे लिए ?

ईसा

आज तक हम सब का ध्येय था जनता की सेवा करना। सुखी रहकर, दुखी होकर जिस तरह से भी हुआ अब तक हम सब इस मार्ग पर बढ़ते रहे। मैं जानना चहता हूँ कि मेरे बाद क्या तुम लोग इस काय को आगे बढ़ ते रहोगे ?

दोनों

आप के बाद""यह क्या कहते हैं आप !

ईसा

मैंने तुमसे कहा न कि न जाने क्यों आज इन बातों की

जानने की इच्छा हो आयी है। अतएव इन प्रश्नों का उत्तर दे दो जिससे मैं संतुष्ट हो जाऊँ।

पहला

हमारे कार्य से आप अब तक संतुष्ट रहे हैं और हम आप को विश्वास दिलाते हैं कि भविष्य में भी हम वही करेंगे जिसस आप को पूर्ण सताष हो।

ईसा

मैं आश्वस्त हुआ। इतना और ध्यान रखना कि प्रत्येक व्यक्ति हमारे प्रेम का पात्र है। कर सकोगे सबसे प्रेम ?

दूसरा

अन्यायी से, अधर्मी से, अत्याचारी से भी क्या ?

ईसा

इनसे ही नहीं, इनसे बढ़कर जो पापी हो उससे भी प्रेम करो, तभी मुझे संतोष होगा। बोलो, हो तैयार ?

दूसरा

तैयार हैं।

ईसा

मैं परीक्षा लूँगा !

दूसरा

किसी भी कसौटी पर कसिये ; आप के शिष्य खरे उतरेंगे !

(तीसरे शिष्य का शीघ्रता से प्रवेश। सब उसकी ओर साश्चर्य देखते हैं।)

तीसरा शिष्य

भगवन, राज्य के सैनिक……।

दोनों शिष्य

एं……सैनिक ! राज्य के ?

ईसा

क्या किया सैनिकों ने ?

तीसरा

दूर पर वेश बदले हुए बहुत से सैनिक घूम रहे हैं ! उनका लक्ष्य यही मकान जान पड़ता है ।

ईसा

अच्छा, बाहर जाओ । कोई विशेष बात हो तो सूचना देना ।

(तीसरे शिष्य का प्रस्थान)

पहला

तो क्या………।

ईसा

वे मुझे बंदी बनाने आये हैं । उसकी चिंता छोड़ो । मैं कह रहा था तुमसे कि परीक्षा लूँगा तुम्हारी । समय कम है । इसलिए साफ-साफ सुनो ; मुझे बंदी कराने में मेरे एक नासमझ मित्र का भी हाथ है ।

दोनों

(अचकचाकर) एं ! आपके मित्र का हाथ !

ईसा

हाँ, मित्र, सखा, भाई, शिष्य जो चाहो कह लो ! परन्तु उससे न तुम अप्रसन्न होना, न उसपर क्रोध करना और न तिरस्कार ही करना। वह बेचारा दया का पात्र है; प्रेम का भूखा है। उसपर तुम दया करना, प्रेम करना। बोलो ! मेरी इतनी बात मान सकोगे तुम ?

पहला

ऐसे की करनी जो सुनेगा वही धिक्कारेगा और............!

दूसरा

और आज ही क्या, जब तक यह संसार रहेगा, भाई-चारे या गुरू--शिष्य का संबंध रहेगा तब तक उसका नाम तिरस्कार से लिया जायगा।

ईसा

भाई, मैं तुम्हारी बात पूछ रहा हूँ। मेरे हृदय में उस व्यक्ति के प्रति जो ममता पहले थी उससे आज बहुत अधिक है, इस पर विश्वास रखो। इसी प्रकार मैं चाहता हूँ कि मेरा प्रत्येक मित्र उसका इसी प्रकार आदर-सत्कार करे जैसा अब तक करता रहा है।

दूसरा

क्षमा किया फिर हमने उसको।

ईसा

भाई, क्षमा करने का अधिकार मनुष्य को नहीं है, प्रेम

करने का है, तुम भी उससे प्रेम करना।

(सेनानायक का चार सैनिकों के साथ प्रवेश। ईसा को घेर कर चारो सैनिक खड़े हो जाते हैं।)

ईसा

आओ भाई, स्वागत! कैसे कष्ट किया इस समय?

सेनानायक

आपको बंदी बनाने की आज्ञा दी है सम्राट ने!

ईसा

मेरा अपराध?

सेनानायक

सम्राट का यह आज्ञापत्र है। इसमें अपराध के उल्लेख का स्थान ही नहीं है।

ईसा

और जो न जाऊँ मैं तुम्हारे साथ?

सेनानायक

तो मुझे बल का प्रयोग करना पड़ेगा। तब आप के साथ आप के कुछ शिष्य भी बंदी बनाये जायँगें।

पहला शिष्य

(तलवार पर हाथ रख कर) अपने बल का घमंड है आपको तो......

ईसा

शांत ! इतनी जल्दी भूल गये मेरी शिक्षा ! तुम्हारा आवेश मेरा मस्तक नीचा करा देगा। (सेनानायक की ओर संकेत करके) ये सम्राट के सेवक है। आज्ञापालन करना इनका कर्तव्य है; इसका इन्हें वेतन मिलता है। अतएव ये भी प्रेम के पात्र हैं। (सेना-नायक से) मैं प्रस्तुत हूँ।

(सेनानायक आगे बढ कर हाथ-पैर बाँधता है। दोनों शिष्य कुछ क्रोधित होते हैं; ईसा उन्हें संकेत से शांत करते हैं; सभी चलने लगते हैं, तभी शीघ्रता से माता मरियम का प्रवेश, ईसा को देखते ही उससे लिपट जाती है)

मरियम

मेरे लाल ! यह क्या देख रही हूँ मैं ? (सेनानायक से) भैया, क्यों बाँध रक्खा है इसको तुमने ? क्या अपराध है इसका ? मेरा बेटा किसी का राज्य नहीं चाहता, दीन-दुखियों की सेवा करता है, रूखी-सूखी खा लेता है। तब क्यों इसे बाँधे लिये जा रहे हो तुम ?

सेनानायक

अपने पुत्र से ही पूछ लीजिए उत्तर इसका।

मरियम

बोलो बेटा, कौन सा अपराध किया है तुमने ? किसका अपराध किया है ? मैं उससे क्षमा माँग लूँगी।

ईसा

सम्राट मुझसे अप्रसन्न हैं और ये बेचारे उनके सेवक हैं। सम्राट की आज्ञा का पालन करने यहाँ आये हैं, न मेरा कोई अपराध है और न इनका ही।

मरियम

(सेनानायक से) मेरे लाल को न ले जाकर मुझे बंदी बना लो तो क्या तुम्हारे सम्राट का क्रोध शांत न होगा ?

सेनानायक

हमें इन्हीं को लाने की आज्ञा मिली है।

मरियम

तो मुझे भी ले चलो इसके साथ-साथ। सम्राट से इसके अपराध की क्षमा माँग लूँगी मैं।

ईसा

माता जी, कोई अपराध नहीं किया है मैंने। दीन-दुखियों से प्रेम करना, उनकी सेवा करना, उनके अधिकार बतलाना यदि अपराध है तो निश्चय ही मैं अपराधी हूँ। और भारी से भारी दंड मुझे मिलना चाहिए। हँसते-हँसते मैं उसे स्वीकार कर लूँगा।

मरियम

हाय बेटा! राजा कितना हत्यारा है! अनगिनती नागरिकों की हत्या, धर्म-पिता की हत्या और तुझे भी उसने.................. (बिलखती है)।

ईसा

माता, क्यों दुखी होती हो तुम इतना ! क्या इस शरीर के लिए ? यह तो नाश होता ही एक दिन ; तब दुख की क्या बात है ? और फिर इसकी बलि दी जा रही है देश और जाति की सेवा के नाम पर—अतएव मुझे संतोष है कि यह निरुद्देश्य नष्ट नहीं होगा । मैंने शक्ति-भर अपने कर्तव्य का निर्वाह किया है ; तुम भी सहर्ष विदा करो मुझे ।

मरियम

बेटा, बेटा, माता को यह आत्मा गौरव नहीं चाहती, यश नहीं चाहती । उद्देश्य और कर्तव्य को ऊँची बातें मैं समझ नहीं पा रही हूँ । मेरा कलेजा टुकड़े-टुकड़े हो रहा है । (सेनानायक से) आप के पास भी पिता का हृदय है ; माता को ममता का अनुभव आप भी कर सकते हैं । आप से मैं भिक्षा माँगती हूँ कि मुझसे मेरे लाल को मत छीनें ।

ईसा

माता, माता, मुझे भी तो आज तुम्हारे चरणों से अलग होना पड़ रहा है, अब मैं इनकी रज अपने मस्तक पर चढ़ाकर गर्व से इठला न सकूँगा । इतनी परवशता में भी देखो, मैं हँस रहा हूँ । माता, तुम भी सहर्ष मुझे विदा करो । तुम्हारे आँसू मोह का परदा कहीं मेरे सामने न डाल दें ; धैर्य धर कर मुझे आशीर्वाद दो, बल दो कि मैं अपने निश्चय

पर दृढ़ रह कर तुम्हारा मस्तक ऊँचा कर सकूँ। (सेनानायक से) चलिए, अब देर क्यों करते हैं ?

मरियम

(सावेश) अच्छा बेटा, जा ; तुझे मैं सहर्ष विदा करती हूँ। देख, मेरी आँखों में आँसू नहीं हैं; देख, मेरे हृदय में व्याकुलता-सूचक कोई हलचल नहीं है। (सेनानायक से) तुम देख रहे हो, तुम साक्षी रहोगे कि ईसा की माता ने पुत्र को हँसते-हँसते बलि होने के लिए भेजा था। पुत्र को भेजते समय उसके आँखों में आँसू नहीं थे, मुख पर उदासी नहीं थी, हृदय में हलचल नहीं थी ··· ··· ··· ·· ···(स्वर क्रमशः क्षीण होता जाता है ; वह मुँह ढक लेती है ।)

[सेनानायक संकेत करता है । सैनिक ईसा को घेर कर चलना चाहते हैं। ईसा के दोनों शिष्य हक्के-बक्के से खड़े हैं। मरियम 'हाय बेटा' कह कर मूर्छित हो जाती है । दोनों शिष्य उसे सम्हालते हैं। तभी ईसा के चौथे शिष्य का प्रवेश।]

चौथा शिष्य

गुरुदेव, देव, जाने से पहले मेरे पाप का मुझे दंड देते जाइए। आपको बंदी बनाने का अपराधी आपका यही कलंकी शिष्य है, जिसे आपने सदैव प्यार किया है, सदैव दुलराया है। (मूर्छित मरियम के पास बैठ कर) माता, तुम्हारे पुत्र का घातक तुम्हारे सुख का संसार उजाड़ने वाला यह नीच यहाँ बैठा है। सोने के ढेर के लोभ में उसने यह पाप कमाया है

माता, मुझे शाप दो—इस सोने को देखने की चाह रखने वाली ये आँखें फूट जायँ, उसे लेने को बढ़ने वाले ये हाथ गल जायँ; हाय, क्या कर डाला मैंने (दोनों हाथों से मुँह छिपा लेता है)……।

ईसा

उठो वत्स ! तुम ने जो किया है उसकी सूचना मुझे मिल चुकी है। तुम्हारा कोई दोष नहीं है—मनुष्य… …।

चौथा शिष्य

भगवन् ! आपकी क्षमा……।

ईसा

तुम मुझे सदैव पूर्ववत् ही प्रिय रहोगे और तुम्हारे इन भाइयों का प्रेम भी तुम से पहले सा ही रहेगा।

चौथा शिष्य

दयालु देव ! आपकी क्षमा महान् है। परन्तु मेरे पापी हृदय को शांति तभी मिलेगी जब आप मुझे कुछ दंड देंगे।

ईसा

अच्छा तो दंड ही स्वीकार करो। मेरी माता की सारी देख-भाल तुम पर रही। (सैनिकों से) चलो भाइयों !

[सेनानायक का सैनिक और ईसा के साथ प्रस्थान]

चौथा शिष्य

(माता मरियम के चरण में लोट कर) हाँ, यह दंड मेरे उपयुक्त है। पुत्र के वियोग में जब माता गाय की तरह

डकरायगी, तब मैं सांत्वना देने का प्रयत्न करूँगा, आह ! पुत्र का हत्यारा माता की सेवा करेगा। खूब रहा ! (दोनों शिष्यों से) भाइयों, तुम साक्षी हो, गुरुवर ने मुझे क्षमा कर दिया है। इसी प्रकार माता से भी क्षमा करवा देना ।......परन्तु क्या मेरा हृदय मुझे क्षमा करेगा ? ओह, पश्चाताप की ज्वाला भीतर ही भीतर सुलग कर मुझे सदैव जलाती रहेगी। संसार मुझ पर थूकेगा, मेरी छाया से, मेरे नाम से घृणा करेगा, तभी इस कलंकी हृदय को शांति मिलेगी। मेरे लोभ ने गुरुदेव की हत्या की है, हत्यारा, पापी मैं.......।

[चौथा शिष्य मूर्छित होकर माता मरियम के समीप गिर पड़ता है। पहला शिष्य माता पर और दूसरा, मूर्छित शिष्य पर हाथों से हवा करता है]

हमारा
आलोचना-साहित्य

१. गोदान : एक अध्ययन (प्रेमचंद कृत) १॥)
२. गबन : एक अध्ययन (,,) १।)
३. निर्मला : एक अध्ययन (,,) ।॥)
४. गोदान-गबन (सम्मिलित) एक अध्ययन २॥)
५. अजातशत्रु एक अध्ययन ('प्रसाद' कृत) १॥)
६. चंद्रगुप्त : एक अध्ययन (,,) १॥)
७. स्कंदगुप्त : एक अध्ययन (,,) १॥)
८. ध्रुवस्वामिनी : एक अध्ययन (,,) १)
९. पंचवटी : एक अध्ययन (गुप्त जी कृत) ॥=)
१०. पथिक : एक अध्ययन (त्रिपाठी कृत) ।॥)
११. चित्रलेखा : अध्ययन (वर्मा जी कृत) ।॥)
१२. हिंदी-रचना : उसके अंग (चौथा संशोधित संस्करण) २॥)
१३. हिंदी-साहित्य का सरल इतिहास १।)

प्रचारित नई पुस्तकें

१४. साहित्य का मर्म (पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी) १।)
१५. हिंदी काव्य शास्त्र का इतिहास (थीसिस) १०)
१६. अध्ययन (डा० मिश्र के उच्च कोटि के निबंध) ३)

विद्यामंदिर, रानीकटरा, लखनऊ

अन्य उपयोगी पुस्तकें

पंचवटी : एक अध्ययन

इसमें बा० मैथिली शरण गुप्त के प्रसिद्ध खंड काव्य की आलोचना है। बहुत थोड़ी प्रतियाँ बच रही हैं। मू० ॥≈)

पथिक : एक अध्ययन

पं० रामनरेश त्रिपाठी के प्रसिद्ध काव्य की सरल और सुबोध आलोचना। मू० ॥)

हिंदी साहित्य का सरल इतिहास

बंबई हिंदी विद्यापीठ की हिंदी भाषा-रत्न और ज्ञानलता मंडल बंबई द्वारा संचालित 'भारतीय विद्यापीठ' की 'राष्ट्रभाषा रत्न' के लिए स्वीकृत। हिंदुस्तानी प्रचार सभा, मद्रास के विद्यार्थियों के लिए भी बहुत उपयोगी है। मू० १)

चित्रलेखा : एक अध्ययन

श्री भगवती चरण वर्मा का जो प्रसिद्ध उपन्यास विशारद तथा अन्य परीक्षाओं के लिए स्वीकृत है, उसी की आलोचना और व्याख्या सहित अध्ययन। मू० ॥)

विद्यामंदिर, रानीकटरा, लखनऊ

हमारा
आलोचना-साहित्य

१. गोदान : एक अध्ययन (प्रेमचंद कृत) १।।)
२. गबन : एक अध्ययन (,,) १।)
३. निर्मला : एक अध्ययन (,,) ।।।)
४. गोदान-गबन (सम्मिलित) एक अध्ययन २।।)
५. अजातशत्रु एक अध्ययन ('प्रसाद' कृत) १।।)
६. चंद्रगुप्त : एक अध्ययन (,,) १।।)
७. स्कंदगुप्त : एक अध्ययन (,,) १।।)
८. ध्रुवस्वामिनी : एक अध्ययन (,,) १)
९. पंचवटी : एक अध्ययन (गुप्त जी कृत) ।।=)
१०. पथिक : एक अध्ययन (त्रिपाठी कृत) ।।।)
११. चित्रलेखा : अध्ययन (वर्मा जी कृत) ।।।)
१२. हिंदी-रचना : उसके अंग (चौथा संशोधित संस्करण) २।।)
१३. हिंदी-साहित्य का सरल इतिहास ।।।=)

प्रचारित नई पुस्तकें

१४. साहित्य का मर्म (पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी) १।)
१५. हिंदी काव्य शास्त्र का इतिहास (थीसिस) १०)
१६. अध्ययन (डा० मिश्र के उच्च कोटि के निबंध) ३)

विद्यामंदिर, रानीकटरा, लखनऊ